साहित्य-सुधा

श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार विरचित साहित्य का संक्षिप्त परिचय

॥ श्रीहरिः ॥

गीतावाटिका
गोरखपुर-२७३ ००६
दि०...............

मान्यवर,

परम श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारके साहित्यका संक्षिप्त-परिचय आपके हाथोंमें है। उनके द्वारा विरचित साहित्य इतना विशाल एवं बहुमुखी है कि उसका पूर्ण परिचय इस लघु पुस्तिकाके माध्यमसे संभव नहीं है। इस प्रयाससे आपको तनिक भी प्रेरणा मिलो तो यह प्रयासकी सफलताका द्योतक होगा।

हम डा० भगवतीप्रसादजीके आभारी हैं।

यह प्रति आपकी सेवामें समर्पित है तथा आपके अमूल्य सुझावोंकी प्रतिक्षा है।

विनयावनत
श्याम सुन्दर दुजारी

साहित्य-सुधा

(भाईजी श्री हनुमानप्रसादजी पोद्दार विरचित
साहित्यका संक्षिप्त-परिचय)

डॉ० भगवती प्रसाद सिंह
एम.ए;पी-एच डी;डी.लिट्.
भू. पू. अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, गोरखपुर विश्वविद्यालय

प्रकाशक—
साहित्य मन्दिर, गीतावाटिका, गोरखपुर

प्रथम आवृत्ति—श्रीराधाष्टमी वि० सं० २०४३
दि० ११ सितम्बर सन् १९८६

मूल्य ५)-

श्रीहरिः

साहित्य-सुधा

विषय-सूची

मुद्रक—संस्थान प्रेस पो० गीतावाटिका, गोरखपुर

राधिकारमण अम्बुजनयन। नन्दनन्दन नाथ हे।
गोपिकाप्राण मन्मथमथन । विश्वरञ्जन कृष्ण हे॥

वन्दना

हमारे जीवन लाड़िलि-लाल।
रास-विहारिनि, रास-बिहारी, लतिका-हेम तमाल ॥
महाभाव-रसमयी राधिका, स्याम रसिक रसराज।
अनुपम अतुल रूप-गुन-माधुरी अँग-अँग रही बिराज ॥
दोउ दोउन हित चातक, घन-प्रिय, दोउ मधुकर, जलजात।
प्रेमी प्रेमास्पद दोउ, परसत दोउ दोउन बर गात ॥
मेरे परम सेव्य सुचि सरबस दोउ श्रीस्यामा-स्याम।
सेवत रहूँ सदा दोउन के चरन-कमल अभिराम ॥

—श्रीपोद्दारजी (पद-रत्नाकर)

॥ श्रीहरिः ॥

साहित्यका सदुपयोग

मनुष्य-जीवनका प्रधान उद्देश्य है भगवत्-साक्षात्कार या भगवत्प्रेम। इसीमें जीवनकी सार्थकता है। अतएव जगत्‌की प्रत्येक वस्तु भी तभी सार्थक होती है, जब उसका प्रयोग भगवान्‌के लिये हो। साहित्य एक बड़ी महत्वकी वस्तु है। इसमें मनुष्यके चित्तको खींचकर उसे चाहे जिस ओर लगा देनेकी शक्ति है। साहित्यका ही प्रभाव था कि एक दिन भारतकी गति सर्वथा भगवद्भिमुखी थी। आज यह साहित्यका ही प्रभाव है कि भारतीय मानव भगवद्विमुख होकर भोगोंकी ओर दौड़ रहा है। परंतु इसमें साहित्यकी सार्थकता नहीं है। यह उसका दुरुपयोग है। जो साहित्य भगवत्प्रीत्यर्थ प्रस्तुत होता है, जो मनुष्यकी अन्तरकी शुभ पवित्र सात्त्विक वासनाओंको जगाकर उसे भगवद्भिमुखी बना देता है, वही सत्-साहित्य है और उसीसे मानव-कल्याण होता है। इसके विपरीत जिस साहित्यसे भोगवासना बढ़ती है, जो अंदरकी असत्-वृत्तियोंको उभाड़कर मानवको भगवान्‌की ओरसे हटा देता है और भोगोंकी अदम्य लालसासे व्याकुल कर देता है, वह असत् साहित्य है और उससे मानव-जगत्‌का सर्वतोमुखी पतन होता है।

(श्रीपोद्दारजी लिखित पुस्तक 'पूर्ण-समर्पण'से)

॥ श्रीहरिः ॥

साहित्य - सुधा

विषय-प्रवेश

भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार परमोच्चकोटिके संत होनेके साथ ही उच्चकोटिके लेखक, कवि एवं ग्रन्थकार थे। हिन्दी साहित्यको जो सामग्री उन्होंने प्रदान की है, उसके फलस्वरूप हिन्दी साहित्यके इतिहासमें श्रीपोद्दारजीका नाम सदैव देदीप्यमान रहेगा। जिस प्रकार वेदोंकी गूढ़ भाषाकी व्याख्या महर्षि वेदव्यासने पुराणों द्वारा की, इसी प्रकार श्रीपोद्दारजीने जब अनुभव किया कि संस्कृत जनसाधारणकी भाषा न रहनेसे हमारा साहित्य लुप्त होता जा रहा है तो उन्होंने सम्पूर्ण संस्कृत-साहित्यके सार भागको वर्तमान देशकी पृष्ठ भूमिमें हिन्दीके माध्यमसे पुनर्व्याख्यायित किया। केवल संस्कृत ग्रन्थोंका प्रामाणिक अनुवाद हिन्दीमें उपलब्ध कराके श्रीपोद्दारजीको सन्तोष नहीं हुआ बल्कि उन्होंने विशाल मौलिक साहित्य सृजन करके हिन्दी साहित्यकी जो अभिवृद्धि की वह अतुलनीय है। लगभग १२ हजार पृष्ठोंका उनका साहित्य हिन्दीमें प्रकाशित हो चुका है। उनके सभी ग्रन्थ चाहें गद्यमें हों या पद्यमें, वे हिन्दी साहित्यकी अमूल्य निधि हैं। इसके साथ ही पत्रकारिता जगत्‌में तो उन्होंने नये कीर्तिमान स्थापित किये ही हैं।

तत्कालीन परिस्थिति

हिन्दीके क्षेत्रमें श्रीपोद्दारजीका उदय ऐसे समयमें हुआ, जब पाश्चात्य शिक्षा एवं सभ्यताके प्रभावसे भारतीय जनमानस अध्यात्म एवं भारतीय संस्कृतिके प्रति उत्तरोत्तर उदासीन होता जा रहा था। ईसाई - धर्म - प्रचारकोंकी शिक्षा तथा चिकित्सा - पद्धति

निर्बाध गतिसे हमारे एक वर्गको अपनी ओर आकृष्ट करनेमें आशातीत सफलता प्राप्त कर रही थी। जनमानस परतन्त्रताकी बेड़ियोंमें तड़फड़ा रहा था। इससे भारतीय-संस्कृतिके कालान्तरमें लोप होनेका खतरा उत्पन्न हो गया था। भीतर ही भीतर सारे देशमें असन्तोषकी ज्वाला भड़क रही थी। हमारे साहित्य एवं संस्कृतिमें शिक्षित वर्गकी आस्था उठने लग गई थी। हिन्दी साहित्यका भंडार अभिवृद्ध नहीं था। यत्किंचित् जो था उसके भी प्रचार-प्रसारकी सन्तोषजनक व्यवस्था नहीं थी। ऐसे समयमें श्रीपोद्दारजीका अवतरण हुआ तथा वे जनताके बहुमुखी उत्थानके लिये सतत संघर्षमें लग गये। कोई भी साहित्यकार तत्कालीन परिस्थितिसे प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता एवं श्रीपोद्दारजी भी इसके अपवाद सिद्ध नहीं हुए।

साहित्यिक अभिरुचिका श्रीगणेश

श्रीपोद्दारजीका जन्म १७ सितम्बर १८९२ ई० को एक वैष्णव परिवारमें हुआ था। अतः बचपनसे ही धार्मिक ग्रन्थोंके अध्ययनकी प्रेरणा मिली। विवाहोपरान्त ये पिता श्रीभीमराजजीको व्यापारमें सहयोग देनेके लिये कलकत्ता चले गये। पिता भी अध्ययन-परायण धार्मिक प्रवृत्तिके व्यक्ति थे। अतएव व्यापार-कार्यसे समय निकाल-कर इनका स्वाध्यायका कार्य यहाँ भी अबाध गतिसे चलता रहा। उन दिनों कलकत्ता राजनीतिक आन्दोलन एवं साहित्यिक गति-विधियोंका प्रमुख केन्द्र था। अतः देशके प्रमुख साहित्यकार वहाँ आये दिन पधारते थे। कुछ समय उग्र राजनीतिमें समय देनेके बावजूद श्रीपोद्दारजी प्रधानतया समाज-सेवी तथा साहित्य-प्रेमी होनेसे उन सभी साहित्यकारोंके सम्पर्कमें आते एवं प्रेरणा प्राप्त करते। इनमें प्रमुख थे—श्रीरामानन्द चटर्जी, श्रीसखाराम गणेश देउस्कर, श्रीबालमुकुन्द गुप्त, पं० लक्ष्मणनारायण गर्दे, पं० जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी, पं० अम्बिका प्रसाद बाजपेयी, पं० झाबरमल शर्मा, श्रीबाबूविष्णु पराड़कर तथा श्रीराधामोहन मुखर्जी आदि।

श्रीपोद्दारजीके अन्दर जो भाव-मन्दाकिनी बह रही थी उसे बाहर निकालनेमें इस सम्पर्कने सहायता की। जनवरी १९११ ई० के

'मर्यादा' मासिक पत्रमें श्रीपोद्दारजीका पहला लेख 'मातृभूमिकी पूजा' प्रकाशित हुआ। इसीके आस-पास इनका 'नवनीत'में 'निवृत्तिका सच्चा स्वरूप' शीर्षक एक अन्य विचारोत्तेजक लेख प्रकाशित हुआ। तत्कालीन साहित्य-प्रेमियोंके बीच ये दोनों लेख चर्चाके विषय रहे। अध्ययन तथा लेखनकी यह प्रवृत्ति उत्तरोत्तर विकसित होती रही।

प्रथम प्रौढ़ रचना

१६१६ ई० में सरकारने राजनीतिक गतिविधियोंमें सक्रिय भाग लेनेके कारण श्रीपोद्दारजीको बंगालके शिमलापाल नामक ग्राममें नजरबन्द कर दिया। इस अवधिमें इन्हें आध्यात्मिक साहित्यके अनुशीलनका पर्याप्त अवसर मिला फलस्वरूप नारद-भक्ति-सूत्रोंकी एक वृहद् व्याख्या इसी समय लिखी। बादमें यही व्याख्या कुछ परिवर्तन-परिवर्द्धनके साथ 'प्रेम-दर्शन' नामसे पुस्तकरूपमें गीता-प्रेससे प्रकाशित हुई। इसमें उल्लेखनीय बात यह है कि शिमलापालमें श्रीपोद्दारजीकी उम्र २५ बर्ष की थी एवं साधना प्रारम्भ ही की थी, उस समय प्रेमाभक्तिकी ऐसी गहरी सैद्धान्तिक व्याख्या कैसे सम्भव हो पायी, जिसे अपने प्रौढ़ आध्यात्मिक जीवनमें भी वे उसी रूपमें अपनाये रहे। इससे यही संकेत मिलता है कि उनके अन्दर भाव-मन्दाकिनी पहलेसे ही तरंगित हो रही थी तथा भगवान्‌ने जिस कार्यके लिये उनका चयन किया था, उसका श्रीगणेश सहजरूपसे जीवनके प्रारम्भसे ही हो गया। इसकी पुष्टि इस तथ्यसे भी होती है कि उन्होंने अपने वसियतनामेमें संकेत रूपसे लिखा है कि—"वास्तवमें इस पाञ्चभौतिक शरीरसे अपने कर्मके अतिरिक्त मेरे द्वारा कुछ 'विशेष कार्य' करवानेकी योजना थी, उनकी कृपा एवं शक्तिसे उनका काम बहुत अंशमें पूरा हो गया।"

सर्वप्रथम चार पुस्तकें बम्बईसे प्रकाशित

नजरबन्दीकी अवधि समाप्त होनेपर सरकारके आदेशसे श्रीपोद्दारजी बंगालसे निष्कासित कर दिये गये। सन् १६१८ में ये बम्बई चले गये। वहाँ भी व्यवसायिक जीवनके साथ ही इनका अध्ययन एवं समाज-सेवाका कार्य पूर्ववत् चलता रहा। गहरे

अध्ययनके फलस्वरूप वहींसे लेखन कार्य अधिक विकसित रूपमें प्रकाशमें आने लगा। इनकी पहली पुस्तक 'मनको वशमें करनेके कुछ उपाय' १९२३ ई० (वि० सं० १९८०) में बम्बईसे प्रकाशित हुई। लेखकके साथ ही कविका रूप भी प्रस्फुटित होने लगा एवं काव्य रचनाका शुभारम्भ भी यहींसे हुआ। इनके रचित पद सुप्रसिद्ध गायनाचार्य श्रीविष्णुदिगम्बरजीको इतने अधिक पसंद आये कि ११४ पदोंका पहला संग्रह 'पत्र-पुष्प' नामसे उन्होंने आग्रह-पूर्वक अपनी प्रेससे (वि० सं० १९८०) १९२३ ई० में छापा एवं सभी पदोंपर राग-ताल आदि उन्होंने स्वयं बैठाये। कई पद वे स्वयं भी प्रेमपूर्वक गाया करते थे। इसी समय श्रीपोद्दारजीको स्त्रियोंके लिये उपयोगी पुस्तककी आवश्यकता प्रतीत होने लगी। ऐसी कोई पुस्तक उस समय हिन्दीमें उपलब्ध नहीं थी जो सरल भाषामें स्त्रियोंको उनके धर्मकी मुख्य बातें अवगत करा सके। इसी उद्देश्यसे उन्होंने 'स्त्री धर्म प्रश्नोत्तरी' पुस्तक लिखी। 'कल्याण' का शुभारम्भ होनेके पूर्व ही १९२५/२६ ई० में इनकी दो पुस्तके 'स्त्री धर्म प्रश्नोत्तरी' एवं 'ब्रह्मचर्य' बम्बईसे प्रकाशित हुई। 'स्त्री धर्म प्रश्नोत्तरी' पुस्तकका समाजने इतना अधिक आदर किया कि अब-तक इसकी सात लाख सत्तर हजार प्रतियाँ छप चुकी हैं एवं इसकी माँग बराबर रहती है। इसीसे अनुमान लग सकता है कि श्रीपोद्दारजीकी रचनाएं प्रारम्भसे ही कितनी लोकप्रिय एवं उपयोगी सिद्ध हुई हैं।

गीताप्रेसकी स्थापनाके पूर्वकी परिस्थिति

श्रीपोद्दारजीने गीताप्रेस एवं 'कल्याण'के माध्यमसे जब साहित्य सर्जन एवं प्रकाशन प्रारम्भ किया उसके पूर्व हिन्दीमें धार्मिक ग्रन्थोंकी उपलब्धि अल्प मात्रामें थी। यहाँ तक कि गीताका शुद्ध हिन्दी अनुवाद भी कठिनतासे प्राप्त होता था। सम्पूर्ण महा-भारत, वाल्मीकि-रामायण, उपनिषद, पुराणोंके प्रमाणिक अनुवाद हिन्दीमें दुर्लभ थे। मौलिक आध्यात्मिक गम्भीर साहित्यका हिन्दी-में अभाव-सा था। जिन ग्रन्थोंकी सत्ताका ही जनसाधारणको पता नहीं था, वे ही ग्रन्थ आज जो लाखों-लाखोंकी संख्यामें हिन्दीमें उपलब्ध हैं, इसका श्रेय श्रीपोद्दारजीको ही है। केवल स्वयं लिखा

हो. इतनी बात: ही नहीं 'कल्याण'के माध्यमसे उन्होंने अनेक लेखकोंको तैयार किया, होनहार लेखकोंको प्रोत्साहन दिया। जो उच्चकोटिके संत लिखनेसे विरत रहते थे, उनसे आग्रहपूर्वक प्रार्थना करके लेख लिखाते थे। इसी माध्यमसे हिन्दीमें गम्भीर आध्यात्मिक विषयोंपर लेख उपलब्ध होने लगे। 'कल्याण'में लेख प्रकाशित होनेसे नये लेखक स्वयंको गौरवशाली अनुभव करते थे। इसके अतिरिक्त श्रीपोद्दारजीकी स्वयंकी लेखनीने अध्यात्म-जगत्के किसी प्रमुख विषयको अछूता ही नहीं छोड़ा वरन् विपुल सामग्री प्रदान की।

श्रीपोद्दारजीका भाषाओंपर अधिकार

इस तथ्यपर कितने लोग विश्वास करेंगे कि आधुनिक विश्वके इतने बड़े विद्वान् जिसने 'कल्याण' एवं 'कल्याण-कल्पतरु' (अंग्रेजी मासिक) जैसे पत्रोंका सफल सम्पादन किया उस बालकने कहीं विधिवत् शिक्षा प्राप्त नहीं की। बचपनमें कुछ महीने श्रीजोरजीकी पाठशालामें हिन्दी एवं महाजनीका अभ्यास किया। बादमें कलकत्तावासके समय तत्कालीन हिन्दीके प्रसिद्ध विद्वानों एवं सम्पादकोंके सम्पर्कमें आकर इन्होंने हिन्दी-साहित्यका समुचित ज्ञान किया। अंग्रेजीका सामान्य ज्ञान भी कलकत्तेमें ही व्यक्तिगत रूपसे श्रीअयोध्याप्रसादजीके पास अध्ययन करके प्राप्त किया। विशेष ज्ञान अपने ही अध्यवसायका परिणाम था। संस्कृतके अभ्यासका श्रीगणेश हुआ आठ वर्षकी आयुमें श्रीबलन्नाथजी महाराजके द्वारा गीताके माध्यमसे, जिसे इन्होंने एक वर्षके भीतर ही कण्ठस्थ कर ली। इसके बाद संस्कृत किसी भी पाठशाला या विद्वान द्वारा पढ़नेका सुयोग प्राप्त नहीं हुआ। लगता है जैसे ये अप्रतिम प्रतिभा उत्पन्न ही पैदा हुए थे। गीताप्रेस द्वारा प्रकाशित विशाल संस्कृत वाङ्मय एवं 'कल्याण'के माध्यमसे आर्ष ग्रन्थोंका अनुवाद सभीका सम्पादन श्रीपोद्दारजीने अद्वितीय प्रतिभासे किया।

इसी तरह बंगला, गुजराती, मराठी भाषाओंपर भी पूरा अधिकार अपने स्वाध्यायसे ही प्राप्त किया। बंगला तो इनकी मातृभाषाकी तरह थी। इनके द्वारा लिखने और बोलनेमें प्रयुक्त

बंगलाको सुनकर उस भाषाका विद्वान् भी यह नहीं भाँप सकता था कि बंगला इनकी मातृभाषा नहीं है। गुजराती एवं मराठी सीखनेमें भी किसी शिक्षकका सहारा नहीं लिया। 'कल्याण' सम्पादनके समय बंगला, गुजराती एवं मराठी भाषाओंमें लिखे विद्वानों एवं धर्माचार्योंके लेखोंका अनुवाद श्रीपोद्दारजी स्वयं कर लेते थे। इन भाषाओंके साहित्यमें निहित दुर्लभ तत्त्वोंको हिन्दी साहित्यमें प्रस्तुत करनेका यही रहस्य था। आसाममें जन्म लेनेसे असमिया भाषाका एवं दादीके साथ पंजाबमें निवास करनेके कारण गुरुमुखी आदि अन्य भाषाओंका भी इनको पर्याप्त ज्ञान था।

'कल्याण'के माध्यमसे हिन्दी साहित्यको देन

हिन्दी पत्रोंके इतिहासमें 'कल्याण'का विकास एक अद्वितीय घटना है जिसकी तुलना किसीसे भी नहीं की जा सकती। बिना पूर्व योजनाके इसका प्रवर्तन हुआ। श्रीघनश्यामदासजी बिड़ला श्रीपोद्दारजीसे एक अधिवेशनमें मिले तथा वहीं साधारण ढंगसे उन्होंने कहा कि तुमलोगोंके पास अपने विचारोंका, सिद्धान्तोंका एक पत्र होता तो तुमलोगोंको अधिक सफलता मिलती। बस यह चर्चा ही 'कल्याण' मासिक पत्रके जन्ममें हेतु बनी। जब सम्पादन-का भार श्रीपोद्दारजीने संभालना स्वीकार कर लिया तो श्रीजयदयाल-जी गोयन्दकाने प्रसन्नतापूर्वक अनुमति दे दी एवं वहीं नामकरण होकर पत्र बम्बईसे निकालनेका निर्णय ले लिया गया। अगस्त १६२६ ई० से 'कल्याण'का शुभारम्भ हुआ। दूसरे वर्षसे पहला अंक विशेषांकके रूपमें प्रकाशित होने लगा तथा पहला विशेषांक था 'श्रीभगवन्नामांक'। इसके प्रकाशित होते ही आशातीत सफलता मिली एवं ग्राहक संख्या सोलह सौसे बढ़कर पाँच हजार हो गयी। इसके पश्चात् तो एक-से-एक बढ़कर 'विशेषांक' निकलने लगे। साधारण अंकोंमें भी ठोस आध्यात्मिक सामग्री प्रकाशमें आने लगी। यह श्रीपोद्दारजीकी विशेषता थी और उन्होंने इसकी भी सतर्कता रक्खी कि आध्यात्मिकताको प्रमुख रहते हुए भी सामयिक पक्षकी उपेक्षा नहीं की। पाठकोंको समुचित पथनिर्देश मिलनेसे 'कल्याण'की दिन दूनी रात चौगुनी उन्नति होने लगी हिन्दी-अहिन्दी सभी प्रान्तोंमें 'कल्याण' समानरूपसे समादृत हुआ।

'कल्याण'के विद्युत् गतिसे विकास होनेका मूल कारण था श्रीपोद्दारजीका दिव्य व्यक्तित्व। किसी प्रकारका भी आग्रह न रखकर जीवमात्रकी सेवाका लक्ष्य रक्खा। महात्मा गाँधीकी सलाहसे प्रारम्भसे ही उन्होंने यह निर्णय ले लिया कि 'कल्याण'में विज्ञापन तथा पुस्तक-समीक्षा स्वीकार नहीं की जायेगी एवं इसपर वे अटल रहे। बिना विज्ञापनके इसकी ग्राहक संख्या आजके नास्तिक युगमें पौने दो लाख तक पहुँचाकर श्रीपोद्दारजीने हिन्दी पत्रकारिता जगत्में एक नया कीर्तिमान स्थापित किया। किसी भी साम्प्रदायिक खंडन-मंडनसे वे सर्वथा दूर रहे। किसी भी सिद्धान्तका खंडन उन्हें अभीष्ट नहीं था। सुन्दर चित्रोंने भी 'कल्याण'के चार चाँद लगाये। सामग्रीकी उत्कृष्टताके साथ ही मुद्रणमें कोई अशुद्धि न रहे इसका वे विशेष ध्यान रखते थे। प्रत्येक प्रूफ तीन बार पढ़ा जाता था जिसमें दो बार वे स्वयं देखते। किसी भी बड़े संत या विद्वान्को श्रीपोद्दारजी लेखके लिये कहते तो कोई भी अस्वीकार नहीं करता। लेख सुन्दर एवं 'कल्याण'की नीतिके अनुरूप होना चाहिये फिर चाहे वह ईसाई लिखे या मुसलमान अथवा पारसी श्रीपोद्दारजी उसे स्थान देते थे। सिद्धान्तपर वे इतने दृढ़ रहे कि उसके अनुरूप सामग्री न हो तो बड़े-से-बड़े लेखकके लेखमें भी वे संशोधन कर देते थे। समाजके विभिन्न वर्गोंके उपयोगी लेख देनेकी उन्होंने सतत् चेष्टा रखी। हिन्दी साहित्यमें अध्यात्मिक ऐसे ठोस लेख पहले कभी भी इस मात्रामें प्रकाशित नहीं हुए थे।

'कल्याण'के माध्यमसे श्रीपोद्दारजीने हिन्दी-साहित्यको समृद्ध बनाया उसमें सर्वोपरि स्थान है उसके विशेषांकोंका। अपने जीवनकालमें उन्होंने ४८ विशेषांक निकाले जो विषय-चयन, सामग्री उत्कृष्टता आदि सभी दृष्टिसे एक-से-एक अनुपम सिद्ध हुए। विशेषांकोंके सम्पादनके समय वे बहुधा रात्रिके डेढ़-दो बजे तक कार्यरत रहते थे। जो प्रूफ सायंकाल ६ बजे आते वे चाहे कितने भी हों प्रातः ७ बजे तक लौटा दिये जाते। प्रत्येक संदर्भके श्लोकों आदिको मूल ग्रन्थसे मिलाया जाता। उनके इस अध्यवसायका ही परिणाम था कि हिन्दी साहित्यके विद्वद्वर्ग उन्हें अपने विषयके

विश्वकोष कहने लगे एवं उनमें प्रकाशित सामग्रीको प्रमाणके रूपमें प्रस्तुत करने लगे। विशेषांकोंकी सामग्रीका विश्लेपण तो यहाँ संभव नहीं है केवल दो सम्मतियाँ दी जा रही हैं—

काशीके प्रसिद्ध विद्वान् श्रीवलदेव उपाध्याय एम० ए०, पी-एच० डी० लिखते हैं—

'कल्याण'के विशेषांक एक-से-एक बड़े तथा महत्त्वपूर्ण हैं, किन्तु "तीर्थाङ्क" तो भारतीय तीर्थोंका विश्व-कोष ही है। इतनी प्रमाणिक उपादेय सामग्री हिन्दीमें तो क्या, किसी भी भाषाके ग्रन्थमें नहीं है। इसे आप अर्थवाद न समझें, यह तथ्यवाद है। ऐसे विशेपांक निकालनेके लिये धार्मिक-जगत् आप लोगोंका चिर-ऋणी रहेगा।

भारतके सुप्रसिद्ध ज्ञानवृद्ध विद्वान् डॉ० भगवानदासजी, डी० लिट्० लिखते हैं—

"आपके सदुद्योगोंकी जितनी प्रशंसाकी जाय थोड़ी है। 'तीर्थाङ्क' देखा—भारतके सब तीर्थोंकी पूरी 'डायरेक्ट्री' है और सैकड़ों अति सुन्दर चित्र भरे पड़े हैं। आपका समस्त हिन्दीभाषी भारत ऋणी है।"

इससे सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि श्रीपोद्दार-जीने हिन्दी-साहित्यके लिये कितना अतुलनीय कार्य किया कि उनके सम्पादित विशेषांक सामान्य पाठकोंकी तो बात ही क्या शोधार्थियों एवं विशेषज्ञोंके लिये भी वे अमूल्य संदर्भ-ग्रन्थ एवं अक्षय ज्ञानकोष बन गये।

संस्कृत-ग्रन्थोंको हिन्दीमें उपलब्ध करना

श्रीपोद्दारजीने अनुभव किया कि हमारा विशाल महत्वपूर्ण साहित्य संस्कृत भाषामें होनेसे वह जनसाधारणके लिये उपयोगी नहीं हो रहा है। इस कमीकी पूर्तिके लिये उन्होंने संस्कृतके विशेष

ग्रन्थोंका सम्पूर्ण अनुवाद या संक्षिप्त अनुवाद हिन्दीमें प्रकाशित किया। इनमें प्रमुख हैं आचार्योंद्वारा गीतापर लिखे भाष्य, सम्पूर्ण महाभारत, श्रीमद्भागवत, श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण, उपनिषद्, ब्रह्मसूत्र पातंजल योग दर्शन एवं 'कल्याण'के विशेषांकोंके माध्यमसे संक्षिप्त पद्मपुराणाङ्क, मार्कण्डेय-ब्रह्मपुराणाङ्क, स्कन्दपुराणाङ्क, नारद-विष्णुपुराणाङ्क, देवीभागवताङ्क, योगवसिष्ठ-अंक, शिवपुराणाङ्क, ब्रह्मवैवर्त्तपुराणाङ्क, अग्निपुराण-गर्गसंहिताङ्क, नरसिंह-पुराणाङ्क आदि।

बाबू पुरुषोत्तमदासजी टंडन 'ब्रह्मवैवर्तपुराण'को हिन्दीमें प्रकाशित करना चाहते थे। उन्होंने बड़े परिश्रम एवं व्ययसे इसका हिन्दीमें अनुवाद कराके 'हिन्दी साहित्य सम्मेलन'को प्रकाशित करानेके लिये सौंप दिया। कई प्रकारकी असुविधाओंके कारण वह बहुत दिनोंतक प्रकाशित नहीं हो पाया। एक दिन अचानक टंडन-जीने देखा कि 'कल्याण'के विशेषांकके रूपमें 'ब्रह्मवैवर्त-पुराण' हिन्दीमें प्रकाशित हो गया है और वह भी अत्यन्त अल्प मूल्यमें। उनके आश्चर्यका ठिकाना नहीं रहा। उन्होंने तत्काल श्रीपोद्दारजीको बधाईका एक पत्र भेजा जिसमें लिखा—"जो काम हम 'हिन्दी साहित्य सम्मेलन' जैसी संस्थाके माध्यमसे करनेमें असमर्थ रहे, वह आपने सहज ही कर दिया। अब हम इस ओरसे निश्चिन्त हैं।"

संस्कृत ग्रन्थोंके प्रकाशनमें श्रीपोद्दारजीने तीन बातोंपर विशेष ध्यान दिया—पाठ शुद्ध एवं प्रामाणिक हो, अर्थ व्याकरण संगत एवं शास्त्रसम्मत हो तथा व्याख्यामें मर्यादाका ध्यान रखा जाय। शृङ्गारिक प्रसंगोंके अनुवादमें मर्यादाका पूरा ध्यान रखा गया। प्रामाणिकताकी रक्षाके लिये उन्होंने कहीं भी परम्परासे स्वीकृत मूल पाठमें परिवर्तन नहीं किया। अनुवादकी भाषा ग्रन्थके अनुकूल, सरल एवं सुबोध रखनेका भरसक प्रयास रहा।

हमारे पुराण-साहित्यको हिन्दीमें उपलब्ध करानेका श्रेय श्रीपोद्दारजीको ही है। इस तरह हिन्दी साहित्यकी एक बड़ी कमीकी पूर्ती करके उन्होंने एक ऐतिहासिक कार्य किया।

उपनामोंसे लेख

जिस प्रकार श्रीपोद्दारजीने अध्यात्म-जगत्‌में अपनेको अन्ततक गोपनीय बनाये रखा उसी तरह हिन्दी साहित्यमें भी उन्होंने सम्पूर्ण सेवाको गुप्त रखनेका सतत प्रयास किया। फलस्वरूप उनकी हिन्दी साहित्यकी देनको बहुत कम लोग जान पाये। पद्य रचनाओंमें तथा उनके प्रकाशित संग्रहोंमें उन्होंने अपने जीवन कालमें कहीं अपना नाम नहीं आने दिया। गद्य लेखोंमें भी अधिकांशमें 'कल्याणमें' प्रकाशित करते समय बिना नाम या उपनामसे प्रकाशित किया। यहाँतक कि प्रतिमास "कल्याण" शीर्षकसे प्रकाशित होनेवाले "सम्पादकीय" लेखमें भी अपने नामके स्थानपर "शिव" नाम देते थे। उन लेखोंके संग्रह जब पुस्तक रूपसे प्रकाशित हुए उसमें भी अपने जीवनकालमें स्वयंके नामके स्थानपर "शिव" नाम ही दिया गया। इस तरह 'कल्याणके' पाठक भी नहीं जान पाये कि ये लेख किसके लिखे हुए हैं। 'कल्याण'में प्रकाशित लेखोंमें जो उपनाम श्रीपोद्दारजीने प्रयुक्त किये उनमेंसे कुछ ये है—"शिव", 'अकिञ्चन,' 'रामदास गुप्त,' 'रामकिंकर प्रसाद,' 'रघुनाथदास,' 'एक प्रेमी सज्जन,' 'कैकेयीनन्दन-पद-वन्दन,' 'रिपुहन दासानुदास,' 'दशरथकुमार पद-रज' 'प्रणत-जन-शरण,' 'एक रामायण प्रेमी, 'कृष्ण-किंकर,' 'दासानुदास,' 'गोपीपद-रेणु,' 'एक दीन' 'एक भावुक,' आदि।

गीताप्रेसके प्रकाशनोंद्वारा हिन्दी साहित्यकी सेवा

जो गौरव हिन्दीको बहुभाषाविद् श्रीपोद्दारजीकी दूरदर्शी दृष्टिसे प्राप्त हुआ वह अमूल्य एवं अकल्पनीय है। हिन्दीकी जितनी सेवा धार्मिक एवं सदाचारप्रेरक ग्रन्थोंको सर्वसुलभ करके, साथ-ही- साथ शुद्ध, प्रभून संस्करण छाप-छापकर उन्होंने की है, उतनी हिन्दी-साहित्यकी सेवा किसी भी सरकारी या गैर सरकारी संस्थानके द्वारा अभी तक नहीं की जा सकी। उनके समयमें लगभग पौने छः सौ पुस्तकें विभिन्न आकार—प्रकारोंमें मुद्रित होकर देश-विदेशमें देवी-सम्पदाका प्रचार-प्रसार करने लगी थी। बहुत सी पुस्तकोंके संस्करण लाखोंकी संख्यामें पहुँच गये थे तथा

श्रीमद्भगवद्गीता एवं श्रीरामचरितमानसके विभिन्न आकारोंके संस्करण करोड़ोंकी संख्यामें पहुच गये । पुस्तकोंकी भाँति गीताप्रेसने भगवान्के विभिन्न स्वरूपों एवं देवी-देवताओंके हजारों प्रकारके रंगीन चित्र प्रकाशित किये हैं, जिनके माध्यमसे लोगोंको अपनी उपासनामें बड़ी सहायता मिली। प्रत्येक चित्र श्रीपोद्दारजीकी भावना एवं अनुभूतिका प्रसाद है। सीता, राधा, पार्वती आदिके चित्रोंमें यह ध्यान रखा गया कि उद्दीपक न होकर मातृभावकी श्रद्धा-भक्ति उत्पन्न करें। चित्रोंमें वस्त्र, आभूषण तथा भाव-भंगिमा इसी दृष्टिकोणसे रखे गये। इस प्रकार गीताप्रेसकी अपनी विशिष्ट शैली बनी जिसे 'पोद्दार चित्रशैली'की संज्ञा दी जा सकती है।

हिन्दीके ग्रन्थोंमें श्रीपोद्दारजी द्वारा प्रमुख रूपसे तुलसी एवं सूरदासके साहित्यका सम्पादन तथा प्रकाशन हुआ । अन्य लेखकोंकी पुस्तकें भी उनके सम्पादकत्वमें प्रचुर मात्रामें प्रकाशित हुई। गोस्वामी तुलसीदासजीके ग्रन्थोंका आज भारतमें जो घर-घर प्रचार हुआ उसका श्रेय एकमात्र श्रीपोद्दारजीको दिया जा सकता है। उनके द्वादश ग्रन्थोंके अलग-अलग संस्करण हिन्दी-साहित्यमें जितनी मात्रामें श्रीपोद्दारजीने प्रचारित किये वे अभूतपूर्व थे एवं भविष्यमें भी उससे अधिक प्रचार कोई कर सकेगा यह संदेहास्पद है। रामचरितमानसका पहला प्रकाशन 'कल्याण'के विशेषांकके रूपमें हुआ । अधिक-से-अधिक प्राचीन प्रतियोंके आधारपर वैज्ञानिक रीतिसे पाठ तैयार किया गया। इसमें श्रीपोद्दारजीकी सहायता पं० चिम्मनलालजी गोस्वामी तथा पं. नन्ददुलारेजी बाजपेयीने की। पाठ-निर्धारणके समय अवधीकी प्रकृति एवं व्याकरणका पूरा ध्यान रखा गया। इसके साथ ही पोद्दारजीने साहित्यिक दृष्टिको भी महत्व दिया है। ग्रन्थके साथ ही पाठ-निर्धारण सम्बन्धी सिद्धान्त एवं प्रक्रियाका विस्तृत विवरण प्रकाशित कर उन्होंने भावी पाठानुसंधायकोंके लिये दृढ़ आधारभूमि प्रस्तुत कर दी। अब तक इस ग्रन्थके जितने संस्करण निकले हैं उनमें श्रीपोद्दारजी द्वारा गीताप्रेससे प्रकाशित संस्करण सर्वोत्कृष्ट एवं सबसे अधिक समादृत हुआ। श्रीपोद्दारजीने स्वयं रामचरितमानस, विनय-पत्रिका एवं दोहावलीकी टीकायें लिखी।

इन सबके साथ ही श्रीपोद्दारजीने अनुभव किया कि हिन्दीमें महिलावर्गको सत्य मार्गका निर्देश करनेवाली पुस्तकोंकी अनिवार्य आवश्यकता है तथा बच्चोंकी प्रारम्भिक शिक्षाके साथ ही नैतिक शिक्षाको जोड़ देना भी अत्यावश्यक है। इनकी पूर्तीके लिये उन्होंने लाखों-लाखोंकी संख्यामें स्त्रियोपयोगी एवं बालकोपयोगी पुस्तकें प्रकाशित की। बालशिक्षाके अनुभवी विद्वानों द्वारा मनोवैज्ञानिक पद्धतिसे बालकोंको प्रारम्भिक कक्षाओंमें पढ़ाने योग्य पुस्तकें तैयार करायीं। आकर्षक चित्रों सहित सदाचारकी बातें ऐसे सुन्दर ढंगसे प्रस्तुत की गयी कि वे बालकोंके हृदयमें अपना स्थान बनालें। बालकोंका चित्रोंमें स्वाभाविक आकर्षण होता है इस दृष्टिसे राम, कृष्ण, बुद्ध तथा चैतन्य आदि की कथाएँ चित्रोंके साथ प्रस्तुत की गयी। इस प्रकारका साहित्य प्रचुर मात्रामें प्रकाशित करके पोद्दारजीने एक महत्वपूर्ण कार्य किया।

ऐसे व्यापक प्रचारको देखकर ही बंगालके प्रसिद्ध महात्मा श्रीसीतारामदास ओंकारनाथने एक स्थान पर लिखा—

"श्रीपोद्दारबाबाके शरीरके आश्रयसे हमारे प्रभुने जो अपूर्व शास्त्र-प्रचार एवं धर्मप्रचारकी लीला की है, वह न कभी हुई है और न होगी। ...... इस दारुण कलियुगमें सर्वत्र जो धर्म-प्रचार, श्रीनाम-प्रचार और शास्त्र-प्रचार कर रहे हैं. इस प्रकारके प्रचारकी बात मैंने किसी इतिहासमें, पुराणमें नहीं देखी, अथवा किसी धर्म प्रचारकने इस प्रकार विश्वव्यापी धर्मप्रचार किया हो—यह नहीं सुना।"

श्रीपोद्दारजी द्वारा लिखित रामचरितमानसकी भाषाटीकाकी सहायता लेकर इन्होंने रामचरितमानसका बङ्गानुवाद किया।

गीताप्रेसके माध्यमसे श्रीपोद्दारजी द्वारा प्रकाशित साहित्यकी एक ओर आध्यात्मिक महत्वकी तुलना किसीसे भी नहीं की जा सकती वहीं दूसरी ओर हिन्दी साहित्यकी जो अभिवृद्धि हुई उसका भी दूसरा उदाहरण नहीं मिलता। सम्पूर्ण हिन्दी साहित्यके उत्थानमें गीताप्रेससे प्रकाशित साहित्यकी भूमिका अप्रतिम है। इस सन्दर्भमें डा. जगदीश गुप्तने लिखा है—

"मैंने भारतीय प्रकाशनोंके तुलनात्मक आँकड़ोंको देखा और पाया कि यदि गीताप्रेसके प्रकाशनोंको कम कर दिया जाय तो हिन्दी भाषाका स्थान भारतकी अन्य कई भाषाओंके नीचे आ जायेगा।"

अहिन्दी भाषी प्रदेशोंमें हिन्दीका प्रचार

'कल्याण'की भाँति गीताप्रेससे प्रकाशित अन्य पुस्तकें भी अहिन्दी भाषी प्रदेशोंमें समादृत हुईं। इनके माध्यमसे ऐसी ठोस एवं गम्भीर सामग्री हिन्दीमें प्रकाशित होने लगी, जिसका अन्य भाषाओंमें अभाव था। साथ ही यह ध्यान रखा गया कि भाषा क्लिष्ट न होकर सरल रहे, जिससे गम्भीर विषय भी सरलतापूर्वक हृदयग्राही बन जाय। इसका फल यह हुआ कि श्रीपोद्दारजी द्वारा लिखित ग्रन्थ पढ़नेके लिये अहिन्दी भाषी लोग हिन्दीका अध्ययन करने लगे। दक्षिण भारतमें जहाँ हिन्दी भाषाके प्रति जनतामें कटुताका भाव है, वहाँके लोग भी 'कल्याण' एवं पोद्दारजीके ग्रन्थ पढ़नेके लिये हिन्दीका अध्ययन करने लगे। हिन्दीके प्रचारके लिये इससे उत्तम मार्ग हिन्दी साहित्यके इतिहासमें शायद ही किसीने अपनाया कि सामग्रीकी श्रेष्ठताको ग्रहण करनेके लिये हिन्दी भाषाका अध्ययन करें। हिन्दीभाषाके प्रति कटुता दूर करनेका भी यह सर्वोत्कृष्ट मार्ग था। इस सम्बन्धमें दक्षिण भारतके विद्वान् श्री र० शौरि राजन् लिखते हैं—

"मेरा उनके (श्रीपोद्दारजीके) साथ परोक्षतः परिचय सन् १९४९ से है। मैं तत्काल तञ्जौर जिलेके तिरुवैयारुमें स्थित 'महाराजा संस्कृत कालेज'में 'तर्कशिरोमणि'की उच्च कक्षामें पढ़ रहा था। स्वाध्यायसे थोड़ा हिन्दी सीख गया था। हिन्दी सीखनेकी अभिरुचि मुझ जैसे शत-शत छात्रोंके मनमें जगायी गीत प्रेसकी छोटी छोटी ज्ञानवर्धक पुस्तिकाओंने। 'हिन्दू-संस्कृतिका स्वरूप' 'उपनिषदोंके चौदह रत्न', सचित्र संक्षिप्त भक्त चरित्र-मालाके दशाधिक प्रकाशन, 'कल्याण'के वार्षिक विशेषाङ्क आदि उपादेय प्रकाशन हमें नूतन दिशा-दर्शन देते रहे।

श्रीपोद्दारजीकी उत्तम पुस्तक 'हिन्दू संस्कृतिका स्वरूप'क तमिलमें अनुवाद करनेका परम सौभाग्य मुझे १९५६ में मिला;

साथ ही, कुछ अन्य पुस्तकोंका भी, जो पोद्दारजीकी लिखी थीं। ये तमिल अनुवाद दक्षिण भारत 'हिंदी-प्रचार सभा'के प्रेसमें छपे थे। मैंने कई विद्वानों एवं सामान्य व्यक्तियोंके मुँहसे सुना—'ऐसी पुस्तकोंके द्वारा ही हमारी गरिमा-पूर्ण हिन्दू-संस्कृतिका युगानुकूल प्रचार-प्रसार हो सकता है। गीताप्रेसवाले बड़ी ही श्लाघ्य सेवा कर रहे हैं। यदि श्रीपोद्दार-जैसे एक भी विद्वान् तथा त्यागमूर्ति प्रत्येक भारतीय भाषामें रहते तो भारतका उत्थान सुसाध्य हो जाता।"

श्री शा. रा. शारगपाणिने लिखा—

"दक्षिणभारत हिन्दी-प्रचार सभा'के भवनमें आयोजित स्वागत-समारोहमें सभाके तत्कालीन प्रधानमन्त्री श्रीसत्यनारायण-ने श्रद्धेय भाईजी (पोद्दारजी) और अन्य तीर्थयात्रियोंका सादर स्वागत करते हुए हर्ष प्रकट किया कि 'यात्रीदलके आगमनसे दक्षिणमें भक्ति-आन्दोलनको ही नहीं, किंतु हिंदी-प्रचार-आन्दो-लनको भी बहुत बल मिला है। ....

गीताप्रेसके उन्नायक, 'कल्याण'के सम्पादक, रामचरितमानस के टीकाकार और कितने ही अमूल्य भक्ति-ग्रन्थोंके रचयिताके रूपमें श्रीभाईजीने धार्मिक और साहित्यिक क्षेत्रोंमें अपनी अमिट छाप छोड़ी है, करोड़ों भक्तोंके हृदयोंमें अपने लिये एक महोन्नत एवं स्थायी स्थान अर्जित कर लिया है।"

इससे अनुमान किया जा सकता है कि अहिंदी-भाषी प्रदेशोंमें श्रीपोद्दारजीने अपनी दूरदर्शी दृष्टिके माध्यमसे हिंदी-साहित्यके प्रचारका कितना गहन तथा महत्वपूर्ण कार्य सहज ही कर दिया।

विविध रूपोंमें साहित्य-निर्माण

श्रीपोद्दारजीकी दृष्टिमें साहित्य-निर्माणका लक्ष्य सर्वोत्कृष्ट था। उनकी मान्यता थी मानव जीवनका लक्ष्य भगवत्प्रेम प्राप्ति है। वे मानते थे—"सत्साहित्य ही वास्तविक 'साहित्य' पद वाच्य है।

जो साहित्य विभिन्न क्षेत्रोंमें समान भावसे सभीको कल्याण-मार्ग पर चलनेके लिये प्रेरणा देता है, सभीका कल्याण करता है, वही सत्साहित्य मानवको श्रेयकी ओर ले जानेके लिये विभिन्न रूपोंमें आत्मप्रकाश करता है तथा मानवको सदा श्रेयके मार्गपर ही आगे बढ़ाता रहता है।"

लक्ष्य इतना महान् होनेसे श्रीपोद्दारजीने प्रारम्भसे अन्ततक जो भी लिखा चाहे वह गद्यमें हो या पद्यमें मनुष्य मात्रके जीवनको इसी लक्ष्यकी ओर अग्रसर करनेके लिये, उसके सर्वांगीण विकासके लिये लिखा। इसी महान् आदर्शके फलस्वरूप उनकी लेखनीने अध्यात्म-जगत्के किसी विषयको अछूता ही नहीं छोड़ा वरन् विपुल सामग्री प्रदान की। उनके साहित्यको निम्नलिखित वर्गोंमें रखा जा सकता है—

१. पद्यात्मक रचनायें २. निबन्ध ३. सम्पादकीय ४. पत्र ५. संस्मरण ६. गद्यकाव्य ७. प्रवचन ८. टीका।

उन्होंने जीवन-पर्यन्त किसी व्यक्ति, पुस्तक अथवा सम्प्रदाय-की आलोचना नहीं लिखी। वे स्वयं अहर्निश दिव्य भाव-राज्यमें प्रतिष्ठित रहते थे अतः साधारण कवियों एवं लेखकोंकी भाँति जन-रंजनकी सामग्री उनकी लेखनीसे संभव ही नहीं थी। जीवनके अन्तिम दस-बारह वर्षोंमें उनकी स्थिति बड़ी दिव्य रही। वे चाहते थे वृत्तियोंको जीवमात्रकी सेवामें पूर्ववत् लगाये रखना पर वे बलात् पहुँच जाती थी श्रीराधा-माधवके दिव्य लीला-राज्यमें। कभी-कभी यह भाव-समाधिकी स्थिति १५-२० घण्टोंतक रह जाती थी। ऐसी स्थितिमें साहित्य-निर्माणका कार्य भी शिथिल हो गया। 'कल्याण' के लिये 'सम्पादकीय' लेख अथवा अत्यन्त आवश्यक विषयपर ही लेखनी चलती थी। उनकी लेखनीने सर्वथा विराम नहीं लिया। नित्यलीलालीन होनेके कुछ दिनों पूर्वतक सर्वथा अशक्त अवस्थामें भीषण पीड़ाकी स्थितिमें काँपते हुए हाथोंसे भी लेखनी चलती रही।

श्रीपोद्दारजी विरचित साहित्य

श्रीपोद्दारजीका अधिकांश समय 'कल्याण' जैसे सर्वाधिक लोकप्रिय पत्रके सम्पादनमें ही व्यतीत होता था। इस गुरुतर दायित्वका निर्वाह करते हुए ही उन्होंने जिस विशाल एवं व्यापक साहित्यकी सर्जना की है उसके विश्लेषणकी कल्पना करना तो दूरकी बात है, उसका पूर्ण परिचय भी इस लघु प्रयासके माध्यमसे सम्भव नहीं है। यहाँ केवल संकेत मात्रसे ही उनके साहित्यका परिचय देनेका प्रयास किया जा रहा है। उसका पूरा अनुमान तो उसमें अवगाहन करनेसे ही सम्भव है। सर्वप्रथम उनकी कृतियोंके नाम दिये जा रहे हैं—

निबन्ध संग्रह

नाम	सं० २०४२ तक प्रकाशित संख्या
१—श्रीराधामाधव चिन्तन	२६,०००
२—भगवच्चर्चा भाग १ (तुलसीदल)	५०,०००
३—भगवच्चर्चा ,, २ (नैवेद्य)	७७,२५०
४—भगवच्चर्चा ,, ३	३३,०००
५— ,, ,, ४	३०,०००
६— ,, ,, ५	२०,०००
७—पूर्ण समर्पण (भगवच्चर्चा भाग-६)	२१,०००
८—मानव जीवनका लक्ष्य	४०,०००
९—अमृत-कण	२५,०००
१०—सुखी बननेके उपाय	२०,०००
११—भवरोगकी रामवाण दवा	१,४५,२५०
१२—समाज किस ओर जारहा है	४,०००

पत्र-संग्रह

नाम	संख्या
१—लोक-परलोकका सुधार भाग १	५५,२५०
२— ,, ,, २	७७,२५०
३— ,, ,, ३	३०,०००
४— ,, ,, ४	२५,०००
५— ,, ,, ५	२५,०००

६-व्यवहार और परमार्थ	५०,०००
७-सुख शान्तिका मार्ग	३०,०००
८-शान्तिकी सरिता	४.०००
९-सुखी बनो	४,०००

उद्बोधक साहित्य
(सम्पादकीय लेख)

१-कल्याण कुंज भाग १	२,०२,२५०
२- " " २	९५,०००
३- " " ३	६५,०००
४-मानव कल्याणके साधन	४०,०००
५-दिव्य सुखकी सरिता	७५,०००
६-सफलताके शिखरकी सीढ़ियां	७५,०००
७-परमार्थकी मंदाकिनी	१०,०००

स्त्रियोपयोगी साहित्य

१-नारी शिक्षा	५,१०,०००
२-स्त्री धर्म प्रश्नोत्तरी	७,७०,०००

पद्यात्मक रचनायें

१-पद-रत्नाकर	१५,०००
२-पत्र-पुष्प (भाग ५)	३,२५,०००
३-व्रज-रस-माधुरी	१०,०००
४-व्रज-रसकी लहरें	५,०००
५-हरिप्रेरित हृदयकी वाणी	५,०००
६-प्रार्थना पीयूष	१०,०००
७-मधुर	२०,०००
८-श्रीराधा-माधव-रस सुधा	१,२५,०००
९-शिव चालीसा	९,१०,०००

टीका साहित्य

१-प्रेम दर्शन (नारद भक्ति सूत्रोंकी व्याख्या)	१,६४,०००
२-श्रीरामचरितमानस (टीका सहित)	२७,७४,०००
३-विनय-पत्रिका (टीका सहित)	६,३०,०००
४-दोहावली (")	४,९९,२५०
५-रास पञ्चाध्यायी(")	१०,०००

अन्य पुस्तकें नाम	प्रथम प्रकाशनका विक्रमी सम्वत्
१-मनको वशमें करनेके कुछ उपाय	१६८०
२-ब्रह्मचर्य	१६८२
३-समाज सुधार	१६८५
४-साधन-पथ	१६८६
५-मानव धर्म	१६८६
६-भक्त बालक	१६८७
७-आनन्दकी लहरें	१६८८
८-भक्त पंचरत्न	१६८८
९-आदर्श भक्त	१६६०
१०-प्रेमी भक्त	१६६०
११-गोपी प्रेम	१६६१
१२-दिव्य संदेश	१६६२
१३-उपनिषदोंके चौदह रत्न	१६६२
१४-मारवाड़ी धार्मिक गीत	१६६२
१५-वर्तमान शिक्षा	१६६३
१६-प्राचीन भक्त	१६६६
१७-हिन्दू क्या करें ?	२००२
१८-सत्संगके बिखरे मोती	२००७
१९-प्रार्थना	२००७
२०-हिन्दू संस्कृतिका स्वरूप	२००८
२१-सिनेमा मनोरंजन या विनाशका साधन	२००६
२२-विवाहमें दहेज	२०१०
२३-बलपूर्वक देवमन्दिर प्रवेश और भक्ति	२०१०
२४-दीन-दुखियोंके प्रति कर्तव्य	२०१०
२५-दैनिक कल्याण-सूत्र	२०१०
२६-जीवनमें उतारनेकी सोलह बातें	२०१४
२७-श्रीराधा नाम और राधा उपासना सनातन है	२०१४
२८-पद	२०१४
२९-रासलीला-रहस्य	२०२०
३०-गीतामें विश्वरूप दर्शन	२०२१

३१–रस और भाव २०२२

३२–पूर्ण परात्पर भगवान श्रीकृष्णका आविर्भाव २०२३

३३–श्रीराधा-जन्माष्टमी व्रत महोत्सवकी प्राचीनता-महिमा और पूजा विधि २०२५

३४–कल्याणकारी आचरण २ २६

३५–मेरी स्थितिका स्पष्टीकरण २०२६

३६–श्रीकृष्ण महिमाका स्मरण २०२७

३७–श्रीराधा-माधवका मधुर रूप-गुण-तत्व २०२७

३८–दाम्पत्य जीवनका आदर्श २०३२

३९–सत्संग वाटिकाके विखरे सुमन २०३४

४०–परमार्थकी पगडडियाँ २०३४

४१–आरती माला २०३४

आंशिक स्वरचित एवं सम्पादित पुस्तकें

१–भक्त नारी १९८७

२– " चन्द्रिका १९९०

३– " सप्तरत्न १९९०

४– " कुसुम १९९०

५–यूरोपकी भक्त स्त्रियाँ १९९०

६–भक्तराज हनुमान १९९५

७–सत्यप्रेमी हरिश्चन्द्र १९९६

८–प्रेमी भक्त उद्धव १९९६

९–महात्मा विदुर १९९६

१०–भक्तराज ध्रुव १९९६

११–भक्त सौरभ १९९६

१२–भक्त सरोज १९९६

१३–भक्त सुमन १९९६

१४–ढाई हजार अनमोल बोल (संत वाणी) १९९६

१५–भक्त महिलारत्न २००८

१६–भक्त सुधाकर २००८

१७–भक्त दिवाकर २००८

१८–भक्त रत्नाकर २००८

१६–ईश्वरकी सत्ता और महत्ता २००६

२०–आरती संग्रह २०१०

श्रीपोद्दारजीके ग्रन्थोंका अन्य भाषाओंमें अनुवाद

हिन्दी साहित्यके लिये यह गौरवकी बात है कि श्रीपोद्दारजी-के बहुतसे ग्रन्थोंका अनुवाद संस्कृत तथा अन्य देशी विदेशी भाषाओंमें हुआ। अभीतकके उपलब्ध अनुवादोंकी तालिका निम्नलिखित है—

संस्कृतमें अनुदित ग्रन्थ

१–श्रीप्रेमदर्शनम् (प्रेम दर्शनका अनुवाद)
२–रसभावविमर्शः (श्रीराधा-माधव प्रेमतत्वका वृहद विवेचन)
३–श्रीराधा-माधव-रस सुधा (षोडश गीतम्)

अंग्रेजीमें अनुदित ग्रन्थ

1—The Philosophy of Love
2—Way to God-Realization
3—Gopi's Love for Shri Krishna
4—Our Present-Day Education
5—The Divine Name and its Practice
6—Wavelets of Bliss
7—The Divine Message
8—Transcedent Bliss and Love
9—Nectarean Bliss of Sri Radha-Madhav
10—Fountain of Bliss
11—Path To Divinity
12—Turn To God
13—Look Beyond The Veil
14—How To Attain Eternal Happiness.

'हिन्दू-संस्कृतिका स्वरूप' तथा कुछ अन्य पुस्तकोंके अनुवाद तमिल भाषामें भी छपे। ये तमिल अनुवाद 'दक्षिण भारत हिंदी-प्रचारसभा'के प्रेसमें छपे थे।

श्रीपोद्दारजीकी रामचरितमानसकी टीकाके आधारपर उसका अनुवाद बंगलामें महात्मा श्रीसीतारामदास ओंकारनाथजीने किया था।

श्रीपोद्दारजीके राधाकृष्ण-सम्बन्धी साहित्यमें 'श्रीराधामाधव-रस-सुधा' पुस्तिकाका स्थान महत्वपूर्ण है। इसमें श्रीप्रिया-प्रियतमके सुमधुर प्रेमालापका सोलह गीतोंमें भाव चित्रण है। इनकी विशेषता यह है कि इन पदोंमें श्रीराधा-कृष्ण दोनोंको ही परस्पर प्रेमास्पद एवं प्रेमीके स्वरूपमें चित्रण किया गया है। आठ पदोंमें श्रीकृष्णके श्रीराधाके प्रति प्रेमोद्गार हैं तथा आठ पदोंमें श्रीराधाके श्रीकृष्णके प्रति प्रेमोद्गार है। यह पुस्तक इतनी अधिक सर्वप्रिय हुई कि इसके अनुवाद सर्वाधिक भाषाओंमें हुए। अभी तक 'श्रीराधा-माधव-रस-सुधा' के अनुवाद संस्कृत, तमिल, तेलगू, मलयालम, कन्नड़, अंग्रेजी, फ्रेंच, जर्मन, रशन (रूसी), बंगला, सिंधी, उड़िया, मराठी, व्रजभाषा, तथा उर्दू आदि में हो चुके हैं।

श्रीपोद्दारजीका काव्य

अनुभूतिको अधिकता सहज ही वाणीका आश्रय लेती है अभिव्यक्त हो उठनेके लिये। प्रबल एवं प्रगाढ़ अनुभूतिकी अभिव्यक्ति जब तक हो नहीं जाती तब तक कवि-हृदय उमड़ता ही रहता है। अभिव्यक्ति कवि हृदयकी एक विवशता और आवश्यकता है और यह अभिव्यक्ति कवि एवं समाज सभीके लिये आनन्ददायिनी होती है। महर्षि वाल्मीकीके अन्तरकी आकुलताकी सहज अभिव्यक्तिने ही उन्हें आदि कवि बना दिया। संत तुलसीके अन्तरकी भावुकताकी ललित अभिव्यक्तिने ही उन्हें राम-कवि बना दिया। इसी सत्यकी आवृत्ति संत-हृदय श्रीपोद्दारजीके जीवनमें भी हुई।

ऐसा प्रतीत होता है कि श्रीपोद्दारजी लिखित गद्य लोकोपकार-की भावनासे, जीवमात्रको परमानन्दकी प्राप्तिके मार्गपर अग्रसर करनेकी भावनासे प्रेरित था वहीं उनका काव्य एकांतिक भक्त-स्वरूप प्रकट करता है। इन पदोंमें उनकी साधनाके सोपान भी दृष्टिगोचर होते हैं तथा अन्तर्हृदयके दर्शन भी होते हैं। ये सभी पद कवि-कल्पना न होकर उनकी अनुभूतिके उद्गार हैं और जो लीला-दृश्य उन्होंने देखे उनके शब्द चित्र हैं।

श्रीपोद्दारजीकी काव्य रचनाका शुभारम्भ उनके बम्बई जीवनसे ही हो गया था जब वे अपनी साधनाकी उच्च भूमिकामें प्रतिष्ठित थे। अपने जीवनमें उन्होंने विभिन्न परिस्थितियोंमें भगवत्-कृपाके दर्शन, अनुभव किये उसीकी अभिव्यक्ति प्रारम्भिक काव्य रचनामें है। उसके पश्चात यह क्रम चलता ही रहा। सन् १९५६ के पश्चात् जब उनकी वृत्ति अधिक अन्तरमुखी रहने लगी तब अधिक काव्य रचना होने लगी। अपने काव्यकी पृष्ठभूमि उन्होंने संकेतसे अभिव्यक्त की है, जो उनके जीवनकालमें सबके समक्ष नहीं आयी। उसीका कुछ अंश नीचे दिया जा रहा है—

"मङ्गलमय भगवान् अनन्त कृपा सिन्धु हैं। उन्होंने कृपा करके मङ्गलमय रोग भेजा।... सहज अकेले रहने का सुअवसर मिला। चिकित्सा-औषध-पथ्यादिके समयको छोड़कर शेष समय अकेला ही बन्द कमरेमें रहता।.... इसी बीच मन्द-मन्द मुसकराते हुए विश्व-जन-मन-मोहन अनन्त आनन्दाम्बुधि श्रीश्यामसुन्दर आते-हँसकर सिरपर वरद-हस्त रखकर कहते— 'मूर्ख, क्यों रो रहा है? क्यों दीन हीन बनकर दुःखी हो रहा है? चल मेरे साथ व्रजमें, देख वहाँ मेरी दिव्य लीला और परमानन्द सागरमें निमग्न हो जा।' श्रीश्यामसुन्दर व्रजेन्द्रनन्दन आनन्द-कंदकी मधुरतम वाणी सुनते ही मनका दैन्य भाग जाता। मन मन्त्रमुग्धकी भाँति उसी क्षण चल पड़ता उनके पीछे-पीछे। वे उसे परम रम्य क्षेत्रमें छोड़कर चले जाते और लग जाते अपने लीला विहारमें।

मन स्वच्छन्द विचरण करता—कभी नन्दबाबाके आँगनमें, कभी यशोदा मैयाके प्राङ्गणमें, कभी गोष्ठमें,.... कभी कालिन्दीके

कूलपर, कभी रासमण्डलमें, कभी प्रेममयी गोपाङ्गनाओंके समुदायमें, कभी अकेली गोपीके घरमें, ... कभी श्रीमतीके पास, कभी श्यामसुन्दरके पास, कभी निभृत निकुञ्जोंमें . . . . इस प्रकार प्रतिदिन-दिनरात महीनोंतक यह दैन्य और लीला-दर्शनका प्रवाह चलता रहा। मनने शत-शत विविध विचित्र लीलाएँ एवं श्रीराधाकृष्णकी अनूप रूपमाधुरी देखी, समझी और किसी-किसी लीलामें सम्मिलित होनेका सौभाग्य प्राप्त किया। . . . . वहाँ जो देखा, वह सर्वथा अलौकिक, दिव्य, मन-वाणीसे अतीत था, अत्यन्त विलक्षण था। उसका पूर्ण वर्णन सम्भव नहीं है। उसके लिये शब्द नहीं है। परन्तु जितना कुछ शब्दोंमें आ सकता था, उसके बहुत ही थोड़े अंशका तथा दैन्यभावकी स्थितिमें प्रकट मनके बहुत ही थोड़े-से उद्गारोंका इन तुकबन्दियोंमें चित्रण करनेका प्रयास किया गया है।"

इन उद्गारोंसे यह प्रत्यक्ष है कि इनकी काव्य रचना सूर, तुलसी, मीरा आदि सभी भक्त कवियोंकी काव्यकृतियोंसे अनुभवकी अभिव्यक्तिकी दृष्टिसे उत्कृष्ट ठहरती हैं। अपने जीवनकालमें पोद्दारजीके अधिकांश पद बिना नामके 'कल्याण'के अकोंमें प्रकाशित होते रहे। कुछ संग्रह पुस्तकरूपसे प्रकाशित हुए अवश्य पर किसीमें भी उन्हें अपना नाम नहीं दिया। उनके नित्यलीलामें लीन होनेके पश्चात् उनकी सम्पूर्ण काव्य-रचनाका संग्रह 'पद-रत्नाकर'के नामसे प्रकाशित हुआ। इसमें (दूसरे संस्करणमें) १५५७ पद हैं। विषय वस्तुकी दृष्टिसे इन समस्त पदोंका १८ वर्गोंमें वर्गीकरण किया गया है। (१) वन्दना एवं प्रार्थना, (२) श्रीराधा-माधव-स्वरूप-माधुरी (३) श्रीराधा-माधव-लीला-माधुरी (४) प्रेम-समुद्रकी मधुर तरङ्गे (५) श्रीकृष्णके प्रेमोद्गार (६) श्रीराधाके प्रेमोद्गार (७) प्रेम तत्व एवं गोपी-प्रेमका महत्व (८) श्रीराधा-कृष्ण-जन्म-महोत्सव (९) श्रीराम-गुण-गान (१०) भगवान्‌के विविध स्वरूपोंका गुण-गान (११) भगवान्‌का स्वभाव (१२) श्रीमद्भगवद्-गीताके विविध प्रसङ्ग (१३) श्रीभगवन्नाम-महिमा (१४) प्रबोध-चेतावनी (१५) अभिलाषा (१६) अनुभूति (१७) व्यवहार-परमार्थ (१८) प्रकीर्ण।

'पद-रत्नाकर'के प्रकाशनके पूर्व श्रीपोद्दारजी हिन्दी-साहित्य जगत्में एक उत्कृष्ट लेखक तथा सम्पादकके रूपमें प्रतिष्ठित थे। काव्य-क्षेत्रमें भी वे इतने प्रशस्त थे और इतना मौलिक योगदान दिया है, यह अधिकांश साहित्यकारोंके परिज्ञानमें नहीं था। इस प्रकाशनके पश्चात् विशिष्ट साहित्यकारोंने आश्चर्य प्रकट किया कि सम्पादन कार्यमें अत्यधिक व्यस्त रहते हुए वे कैसे इतने विपुल परिमाणमें काव्य-रचना कर सके।

भक्त-हृदय सर्वप्रथम अपनेमें दैन्यका अनुभव करता है तथा भगवान्की कृपाका अनुभव करता हुआ उनके विरदपर विश्वास करके आशान्वित होता है। श्रीपोद्दारजी भी बम्बईमें अपनी साधनामें सुप्रतिष्ठित हुए तो गाने लगे--

"आया चरन तकि सरन तिहारी।
वेगि करौ मोहि अभय विहारी॥
जोनि अनेक फिरयो भटकान्यो।
अब प्रभु पद छाडों न मुरारी!॥
मो सम दीन न दाता तुम सम।
भली मिली यह जोरि हमारी॥
मैं हौं पतित, पतितपावन तुम।
पावन करु, निज विरद सभारी॥
(पद-रत्नाकर पद सं. १४४)

उन्होंने भी अनुभव किया कि किसीका भी भरोसा नहीं किया जा सकता केवल प्रभुका भरोसा ही सच्चा है—

अब हरि! एक भरोसो तेरो।
नहि कुछ साधन ग्यान भगतिको, नहि विराग उर हेरो॥
अघ ढोवत अघात नहि कबहूँ, मन विषयनको चेरो।
इंद्रिय सकल भोगरत संतत, बस न चलत कछु मेरो॥
काम-क्रोध-मद-लोभ सरिस अति प्रबल रिपुनतें घेरो।
परवस परथो, न गति निकसनकी यदपि कलेस घनेरो॥

परखे सकल बंधु नहिं कोऊ बिपदकालको नेरो ।
दीनदयाल दया करि राखउ, भव जल बूड़त बेरो ॥

(पद-रत्नाकर पद सं. १२३)

जब मन तनिक भी संसारकी ओर जाने लगता तो तुरन्त कह उठते—

प्रभु ! मेरो मन ऐसो ह्वै जावै ।
विषयनको विष सगरो उतरै, पुनि नहिं कबहूँ छावै ॥
विनसै सकल कामना मनकी अनत न कतहूँ धावै ।
निरखत निरत निरंतर माधुरी, स्याम मुरति सुख पावै ॥
कामी जिमि कामिनि-सँग चाहै, लोभी धन मन लावै ।
तिमि अविरत निज प्रियतमकी सुधि,छिन इक नहिं विसरावै॥
ममता सकल जगतकी छुटै, मधुर स्याम छवि भावै ।
तब आनन-सरोज-रस चाखन मन मधुकर बनि जावै ॥

(पद-रत्नाकर पद सं. १३२)

जब साधक अपनी साधनामें तेजीसे अग्रसर होता है तो वह अनुकूल अथवा प्रतिकूल दोनों परिस्थितियोंमें भगवत्कृपाके दर्शन करता है । विषमसे विषम या भीषण सांसारिक परिस्थितिमें वह विचलित न होकर भगवत्कृपाका अनुभव करके आनन्दित होता रहता है । यही स्थिति पोद्दारजीकी बम्बई जीवनमें थी ।

पुत्र-शोक सन्तप्त कभी कर, दारुण दुख है देती ।
कभी अयश अपमान दानकर, मान सभी हर लेती ॥
कभी जगत्के सुंदर सुख सब छीन, दीन मन करती ।
पथभ्रान्त कर कभी कठिन व्यवहार विषम आचरती ॥

× × × ×

सहज दयाकी मूरति देवीने जबसे अपनाया ।
महिमामय मुखमंडल अपनेकी दिखला दी छाया ॥

तबसे अभय हुआ, आकुलता मिटी, प्रेम-रस छलका।
मनका उतरा भार सभी, अब हृदय हो गया हलका॥
जिन बिभिषिकाओंसे डरकर पहले था थर्राता।
उनमें भव्य दिव्य दर्शन कर अब प्रमुदित मुसकाता॥
भगवत्कृपा! 'अकिंचन' तेरे ज्यों-ज्यों दर्शन पाता।
त्यों-ही-त्यों आनंद-सिंधुमें गहरा डूबा जाता॥

(पद-रत्नाकर पद सं. १२१२)

बम्बईके भौतिक प्रधान जीवनमें भी पोद्दारजी अपने साधन-पथ पर तीव्र गतिसे अग्रसर हो रहे थे। सभी दैवी गुण दैनिक जीवनमें उतर रहे थे और साथ ही वैराग्य भी। उन्हीं दिनों उनके एक मित्रका अचानक देहान्त हुआ। वे बड़े ही शौकीन स्वभावके थे। उनकी शवयात्रामें पोद्दारजी भी श्मशानघाट गये। उनके जलते शवको देखकर वैराग्यके भाव हृदयमें उमड़ने लगे और वहीं एक पद बन गया—

पलभर पहले जो कहता था, यह धन मेरा यह घर मेरा।
प्राणोंके तनसे जाते ही उसको लाकर बाहर गेरा॥
जिस चटक-मटक औ फैशनपर तू है इतना भूला फिरता।
जिस पद-गौरवके रौरवमें दिन-रात शौकसे है गिरता॥
जिस तड़क-भड़क औ मौज-मजोंमें फुरसत नहीं तुझे मिलती।
जिस गान-तान औ गप्प-शप्पमें सदा जीभ तेरी हिलती॥
इन सभी साज-सामानोंसे छुट जायगा रिश्ता तेरा।
प्राणोंके तनसे जाते ही उसको लाकर बाहर गेरा॥
जिस धन दौलतके पानेको तू आठों पहर भटकता है।
जिन भोगोंका अभाव तेरे अन्तरमें सदा खटकता है॥
जिस सबल देह सुन्दर आकृतिपर तू इतना अकड़ा जाता।
जिन विषयोंमें सुख देख रहा, पर कभी नही पकड़े पाता॥
इन धन-यौवन, बल-रूप-सभीसे टूटेगा नाता तेरा।
प्राणोंके तनसे जाते ही उसको लाकर बाहर गेरा॥

(पद-रत्नाकर पद सं. १००३)

बम्बईमें रहते हुए ही पोद्दारजीका मन गंगा किनारे जीवन व्यतीत करनेके लिये छटपटाने लगा। उपरामता इतनी प्रबल हुई कि उन्होंने निश्चय कर लिया कि शेष जीवन एकान्तमें गंगा तटपर ही बिताना है तथा उसके लिये कमण्डलु भी खरीद लिया। पर भगवान्‌को इनसे दूसरा ही कार्य कराना था। 'कल्याण'के पहले वर्षके अंकमें ही उन्होंने हृदयके भाव कविताके माध्यमसे प्रकट किये—

होगा कब वह सुदिन, समय शुभ, मायावी मन बनकर दीन।
मोहमुक्त हो, हो जायेगा पावन प्रभु-चरणोंमें लीन॥
कब जगकी झूठी बातोंसे हो जायेगी घृणा इसे।
कब समझेगा उसे भयानक, मान रहा रमणीय जिसे॥
पुण्यभूमि ऋषिसेवितमें कब होगा इसका निर्जन-वास।
गङ्गाकी पुनीत धारासे कब सब अघका होगा नाश॥
कब साधनके प्रखर तेजसे सारा तम मिट जायेगा।
कब मन विषय विमुख हो, हरिकी विमल भक्तिको पायेगा॥
कब यह मोह-स्वप्न छूटेगा, कब प्रपञ्चका होगा बाध।
पर-वैराग्य प्रकट कब होगा, कब सुख होगा इसे अगाध॥
कब प्रतिबिम्ब बिम्ब होगा, कब नहीं रहेगा चित् आभास।
निजानन्द निर्मल अज-अव्ययमें कब होगा नित्य निवास॥

(पद-रत्नाकर पद सं. १३६)

साधनाकी उच्च भूमिकामें आरूढ़ होने पर भगवान्‌के साक्षात् दर्शनोंके लिये हृदय व्याकुल होता ही है। पोद्दारजी भी इस स्थितिमें पहुँच गये थे। बम्बईके प्रपञ्चमयजीवनमें रहकर ऐसा होना अस्वाभाविक अवश्य लगता है पर पोद्दारजीकी ऐसी ही व्याकुलता इस मारवाड़ी भाषाके पदसे अवश्य झलक रही है—

अब तो कुछ भी नहीं सुहावै, एक तूंहीं मन भावै है।
तनै मिलणनै आज मेरो, हिवड़ो उझल्यो आवै है॥
तड़फ रह्योंज्यूं मछली जल बिन, अब तूं क्यूं तरसावै है।
दरस दिखाणैमैं देरी कर क्यूं, अब और सतावै है॥

पण, जो इसी बातमैं तेरौ, चित राजी होतो होवै।
तो कोई भी आँट नहीं, मनै चाहै जितणौ दुख होवै ॥

तेरे सुखसैं सुखिया हूँ मैं, तेरे लिये प्राण रोवै।
मेरी खातर प्रियतम ! अपणै सुखमें मत काँटा बोवै ॥

पण या निश्चै समझ, तनें मिलणैकी खातर मेरा प्राण।
छिण-छिणमें व्याकुल होवै है, दरसणकी है भारी टाण ॥

बाँध तुड़ाकर भाग्या चावै, मानै नहीं किसीकी काण।
आठों पहर उड्या-सा डोलै, पलक-पलककी समझै हाण॥

पण प्यारा ! तेरी राजीमैं है नित राजी मेरौ मन।
प्राणाधिक, दोनूं लोकाँको, तुँ ही मेरो जीवन-धन ॥

नहीं मिले तो तेरी मरजी, पण तन-मन तेरे अरपन।
लोक-वेद है तूं ही मेरो, तुँ ही मेरो परम रतन ॥

चातककी ज्युँ सदा उड़ीकूँ, कदे नहीं मुँहनै मोड़ूँ।
दुख देवे, मारै, तड़पावे, तो भी नेह नहीं तोड़ूँ ॥

तरसा-तरसाकर जी लेवै, तो भी तनैं नहीं छोड़ूँ।
झांकूं नहीं दूसरी कानी, तेरैमैं ही जी जोड़ूँ ॥

(पद-रत्नाकर पद सं ४०४)

अध्यात्म पथपर पोद्दारजी भगवन् साक्षात्कारके अत्यन्त निकट आ गये थे। हृदयकी सच्ची व्याकुलता और तीव्र उत्कण्ठा होने पर प्रभु दर्शन दिये बिना कैसे रहते ? जब तन-मन-प्राण छटपटाने लगे तब विलम्ब कहाँ ? जैसे ही वे बम्बईके प्रलोभनोंको छोड़कर गोरखपुर आये उसके थोड़े ही समय बाद जसीडीहमें उन्हें दो बार १५-२० महानुभावोंकी उपस्थितिमें भगवानके साक्षात् दर्शन हुए जो अध्यात्म-जगत्की एक सुदुर्लभ घटना थी। इसी घटनाका संकेत निम्नलिखित पदसे मिलता है—

है जो त्रिगुणातीत, नित्य, अज, अव्यय, नाम-रूप-गति-हीन।
हिममे नीर-सदश जो व्यापक सबमें, सबसे परे, अलीन ॥

× × × ×

जिसने अपने मिलनेकी व्याकुलता भर दी थी मनमें।
विरहानल था धधक उठा जिससे उसके सारे तनमें ॥

वही ब्रह्म साकार प्रकट हो, अद्भुत दर्शन है देता।
सत्वर अगणित जन्मोंकी अघराशि पूर्ण है हर लेता ॥

× × × ×

कोमल कर-स्पर्शसे जनको निर्भय नित्य पड़ा करना।
चरण-स्पर्श अभयवाणी, मधुर प्रसादसे दुख हरना ॥
उस छवि-राशि अमितका वर्णन करनेमें वाणी लाचार।
मापा कभी न जा सकता है हाथों से आकाश अपार ॥
भाग्यवती जिन आँखोंने वह देखी रूप-छटा अनुपम।
तृप्त हो गयीं, नहीं बना सकती हैं, वर्णनमें अक्षम ॥
वाणी कुछ प्रयास करती हैं, नेत्रोंका सहाय लेकर।
मनमोहनके अतुल रूपकी मधुर स्मृतिमें मन देकर ॥
उस स्मृतिमें जाते ही तत्क्षण रूपमग्न मन हो जाता।
मनके रुकते ही वाणीका काम नहीं कुछ हो पाता ॥
रुकी. लेखनी, बंद हो गयी, चलता नहीं हाथ आगे।
क्षमा कोजिये प्रेमी पाठक, सरल पाठिके सद्भागे ॥
पूर्ण प्रेमसे मिल करके सब, करिये उनका प्रेमाह्वान।
जिससे सत्वर पुनः प्रकट हों सबके सम्मुख श्रीभगवान ॥

(पद-रत्नाकर पद सं. १५३६)

भगवान्‌के साक्षात् दर्शनोंके बाद भक्तके भावानुसार भगवान्‌से निकटता बढ़ती ही जाती है। पोद्दारजीकी इसके बादकी काव्य-रचना इस तथ्यकी द्योतक है। निम्नलिखित पद इस संदर्भमें द्रष्टव्य हैं—

स्याम मोरे ढिगतें कबहुँ न जावै।
कहा कहूँ सखि ! गेल न छाँडै, जित जाऊँ तित आवै ॥ . . .

(पद-रत्नाकर पद सं. २३३)

वे प्रियतम मेरे श्याम प्राणधन प्यारे।
रहते नित मेरे पास, न होते न्यारे ॥

खाने - पीने - सोने - जगनेके सारे ।
करते वे मेरे साथ कर्म, ध्रुव-तारे ॥......

(पद-रत्नाकर पद सं. ४५८)

रहते नित्य हृदयमें मेरे, कभी न ओझल होते ।
वहाँ अचल डेरा डाले, बस, रहते सुखसे सोते ॥
नहीं किसीको घुसने देते, नहीं झाँकने देते ।
पूरा निज अधिकार जमाये, पूरा आनँद लेते ॥
बाहर भी वे रहते मेरे चारों ओर निरन्तर ।
नहीं किसीको आने देते इन्द्रिय-सीमा भीतर ॥.....

(पद-रत्नाकर पद स. ४६६)

ऐसी स्थितिमें सांसारिक दृष्टिसे बड़े-से-बड़े दुखकी परिस्थितिमें उनके क्या भाव रहते थे इसका संकेत निम्नांकित पदोंसे मिलता है—

देख दुःखका वेष धरे मैं नहीं डरूँगा तुमसे नाथ ।
जहाँ दुःख वहाँ देख तुम्हें मैं पकडूंगा जोरों के साथ ॥
नाथ ! छिपालो तुम मुँह अपना, चाहे अति अँधियारेमें ।
मैं लूंगा पहचान तुम्हें इक कोनेमें जग सारेमें ॥
रोग-शोक, धनहानि, दुःख, अपमान घोर अति दारुण क्लेश ।
सबमें तुम, सब ही है तुममें, अथवा सब तुमरे हा वेश ॥
तुम्हरे बिना नहीं कुछ भी जब, तब फिर मैं किस लिये डरूँ ।
मृत्यु-साज सज यदि आओ तो चरण पकड़ सानन्द मरूँ ॥
दो दर्शन चाहे जैसा भी दुःखवेष धारणकर नाथ ।
जहाँ दुःख वहाँ देख तुम्हें, मैं पकड़ूंगा जोरोंके साथ ॥

(पद-रत्नाकर पद सं. १२१४)

जब इससे और आगे बढ़ते हैं तो गाते हैं—

मिलती अगर सान्त्वना तुमको मेरे दुखसे, हे प्रियतम ।
तो लाखों अतिशय दुःखोंसे घिरी रहूँगी मैं हरदम ॥

किंचित-सा भी यदि सुख देता हो तुमको मेरा अपमान ।
तो लाखों अपमानोंको मैं मानूंगी प्रभु का वरदान ॥
यदि प्यारे ! मेरे वियोग में मिलता तुम्हें कहीं आराम ।
कभी नहीं मिलनेका मैं व्रत लूगी, मेरे प्राणाराम ॥
मेरी आर्ति-विपत्ति कदाचित् तुम्हें सुहाती हो यदि श्याम ।
तो रक्खूगी इन्हें पास मैं सपरिवार नित, दे आराम ॥
मेरा मरण तुम्हें यदि देता हो किंचित्-सा भी आश्वास ।
तो मैं मरण वरण कर लुंगी निकल जायगा तनसे श्वास ॥
सुखी रहो तुम सदा एक बस, यही नित्य मेरे मन चाह ।
हर स्थितिमें मैं सुखी रहूँगी, नहीं करूँगी कुछ परवाह ॥
(पद-रत्नाकर पद स० ६०८)

श्रीराधा-कृष्णके रूप माधुरी तथा लीला दृश्योंके जो चित्र श्रीपोद्दारजीने प्रस्तुत किये हैं वे अत्यन्त सजीव एवं हृदयस्पर्शी हैं। खड़ी बोलीमें इतना सरस भावपूर्ण व्रज रसका साहित्य दुर्लभ है। इन पदोंका रसपान हमें सहज ही सूरकी पदावलीका स्मरण दिलाता है। पर यहाँ भी एक विशेपता है भक्तिकालके कवियोंकी अनुभूतियोंका रस हम किनारे बैठकर ही ले पाते हैं, उनके साथ डूब नहीं पाते किन्तु पोद्दारजीकी अनुभूतियोंमें हम सहभोगी होकर साथ-साथ डूबते-उतराते हैं। दूसरी विलक्षणता यह है कि श्रीराधा-माधवके प्रेम सम्बन्धी इन पदोंने जहाँ एक ओर प्रेमीभक्तों एवं साधकोंको सुधा-समुद्रमें अवगाहन कराया वहीं दूसरी ओर कवियों लेखकों एवं साहित्यकारोंका एक विलक्षण पथ-प्रदर्शन किया। श्रीराधा-कृष्णके तत्त्व-महत्त्वको समझे बिना कई विद्वान् मनीषियों तककी मति भ्रमित हो जाती है। हिंदी-साहित्यमे ऐसा प्रचुर काव्य है जिसमें श्रीराधा-कृष्णका लौकिक नायक-नायिकाको भाँति शृङ्गार-वर्णन है। श्रीपोद्दारजीके इन पदोंने केवल मति-भ्रम ही दूर नहीं किया है—श्रीराधा-कृष्णके उज्ज्वलतम प्रेमका दर्शन कराया है, जिसको हिन्दी-साहित्य-वाङ्मयमें अत्यन्त आवश्यकता थी। यह काव्य-वाणी श्रीराधा-माधव-सम्बन्धी मिथ्या भ्रमसे युक्त शङ्काओंको सदैव निर्मूल करके अनन्त कालतक दिव्य-सुधा-धाराको ही प्रवाहित करती रहेगी। इस असाधारण सफलताका कारण श्रीपोद्दारजी द्वारा उपलब्ध दिव्य अनुभूतियाँ थी।

श्रीराधा-कृष्णकी स्वरूप माधुरी एवं लीला-माधुरीके कुछ चित्र आगे प्रस्तुत किये जा रहे हैं—

हरत मन माधव कंचन-गोरी ।।
राधा अनियारे - रतनारे लोचन सौं, कछ भौंह मरोरी ।
पग पैंजनि, दोउ चरन महावर, करधनि-धुनि मनु मधु-रस-घोरी ।।
दरपन कर, सोहत मुकता-मनि-हार हृदै, मृदु हँसनि ठगोरी ।
नैननि वर अञ्जन मन-रंजन, चित्त-वित्त-हर नित वरजोरी ।।
नील वसन, सरदिंदु वदन - दुति, बेंदी सेंदुर - केसर - रोरी ।
सहज मथत मन्मथ-मन्मथ मन दिब्य छटा वृषभानु-किसोरी ।।
(पद-रत्नाकर पद सं० १७१)

वनहिं बन रस ढ़रकावत डोलैं ।
राधा - माधव - अंसनि कर धरि मधुरो वानी बोलै ।।
स्याम - मेघ राधा - दामिनी नित नव रस - निर्झर खोलैं ।
विहरत दोउ रसमत्त परस्पर, अमिय प्रेमरस घोलैं ।।
रसपूरित भुवि खग - मृग - तरु - सर - सरिता करत किलोलैं ।
उमग्यौ मधु-रस-निधि अगाध, अति उछलत विविध हिलोलैं ।।
(पद-रत्नाकर पद सं० १८६)

माधव मुझको भी तुम अपनी सखी बना लो, रख लो संग ।
खूब रिझाऊँगी में तुमको रचकर नये - नये नित ढंग ।।
नाचूंगी, गाऊँगी, मैं फिर खूब मचाऊँगी हुड़दंग ।
खूब हँसाऊंगी हँस - हँस मैं, दिखा - दिखा नित नूतन रंग ।।
धातु - चित्र पुष्पों - पत्रोंसे खूब सजाऊँगी सब अङ्ग—
मधुर तुम्हारे, देख - देख रह जायेंगी ये सारी दंग ।।
सेवा सदा करूँगी मनकी, भर मनमें उत्साह उमंग ।
आनँदके मधु झटकेसे सब होगी कष्ट - कल्पना भङ्ग ।।
तुम्हें पिलाऊँगी मीठा रस, स्वयं रहूँगी सदा असङ्ग ।
तुमसे किसी वस्तु लेनेका आयेगा न कदापि प्रसङ्ग ।।
प्यार तुम्हारा भरे हृदयमें, उठती रहे अनन्त तरग ।
इसके सिवा माँगकर कुछ भी, कभी करूँगी तुम्हें न तंग ।।
(पद-रत्नाकर पद सं० २८)

देख रहा मैं करते लीला श्रीराधा - माधव सुख - धाम ।
नित्य निकुञ्ज निभृतमें रसमय मधुर मनोहर दिव्य ललाम ।।
त्यागमयी सब सखी - मञ्जी रहतीं सेवामें तल्लीन ।
किये नित्य राधा-माधव-सुख-सेवा-रस-निधिमें मन-मीन ।।
उठतीं रस - समुद्रमें प्रतिपल दिव्य विविध - रसमयी तरंग ।
नित्य नवीन सुधा-विस्तारिणी, नित्य नवीन दिव्य रस-रंग ।।
नहीं काम आदिक विकार कछु, नहीं वासना - लेशाभास ।
चिदानन्दमय होता रहता परम अलौकिक रास - विलास ।।
मिटी सकल कल्पना जगतकी, नहीं रह गया कुछ अवशेष ।
लीलामय श्रीराधा - माधव, लीला नित नव, शेषो - शेष ।।
(पद-रत्नाकर पद सं० २३०)

झूलन सघन कुंज पिय-प्यारी ।
घन गरजत, मृदु दामिनी दमकत, रिमझिम बरसत बारी ।।
भींजत अम्बर पीत, अलौकिक नील सुरंगी सारी ।
मद भर मोर - मोरनी निरतत कूजत कोकिल सारी ।।
गावत मधुरे सुर मल्हार मिलि सखिजन अरु पिय - प्यारी ।
झोंटे देय झुलावत सखि ललितादिक बारी - बारी ।।
चितवत स्यामा - स्याम परस्पर नित नव रस विस्तारी ।
उमड़ि रह्यो आनंद सरस निधि सबहि जात बलिहारी ।।
(पद-रत्नाकर पद सं० १५१८)

आश्विन मास, शरद ऋतु शोभन, शीतल शुभ्र चाँदनी रात ।
कालिन्दी - जल निर्मल मनहर, मन्द सुगन्ध रहा वह वात ।।
रत्न - सुदीप्त रुचिर नौकापर रहे विराजित श्यामा - श्याम ।
करते मधुर विनोद परस्पर नौ-विलास-रत अति अभिराम ।।
श्रीमति बोली—'सुनो प्राणधन ! तुम मुरलीकी छेड़ो तान ।
सुन्दर सुमधुर स्वर लहरीमें मुझे सुनाओ रसमय गान ।।
मैं खेलूंगी नाव, प्राण खेलेंगे रसमय खेल महान ।
नयन - मधुप रसमत्त रहेंगे कर मुख - सरसीरुह - रस - पान ।।
यों कह खेने लगी तरी कर दृष्टि अचचल प्रियकी ओर ।
दृष्टि जमा स्यामा - मुख मुरली लगे बजाने नन्द - किशोर ।।
(पद-रत्नाकर पद सं० २७६)

ऊधौ ! मोहन स्याम हमारे।
लिपटे रहत अँग-अँग निसि-दिन, होत न कबहूँ न्यारे॥
मथुरा जाय मिले कुवजा तैं, ये बाहर के खेल।
हमरौ-उनको छुटत न कबहूँ, हिय तें हिय कौ मेल॥
उनके बिना न सत्ता हमरी, छोड़ कहाँ वे जावें।
वे न रहैं तो हमकूँ जीवित कोई कैसे पावें॥
ऊधौ ! तुम्हरे नहीं नेत्र सो, हमहि स्याम जो दीन्हें।
या तें भरम परे तुम डोलत, ग्यान-जोग-पद लीन्हें॥
हममें-उनमें दीखत जो कछु कबहूँ वियोग-बिछोह।
रस-वर्धन-हित उदय होत, सो लीला-रस-संदोह॥

(पद-रत्नाकर पद सं० ३२३)

याद पड़ रहा है आये थे, भोजन करने मोहन श्याम।
परस रही थी मैं उनको अति रूचिकर भोज्य पदार्थ तमाम॥
यह मेरा भ्रम था, माधव तो खेल रहे कालिन्दी-कूल।
आये क्यों न अभी ? क्या क्रीड़ामें वे गये सभी कुछ भूल॥
भूखे होंगे, कैसे उन्हें बुलाऊँ अब मैं यहाँ तुरन्त ?
हृदय विदीर्ण हो रहा, कैसे हो इस मेरे दुःखका अन्त॥
बना-बनाया भोजन क्या यह नहिं आयेगा प्रियके काम ?
क्या वे इसे धन्य करनेको नहीं पधारेंगे सुखधाम ?॥
माधव सुन हँस रहे प्रियाका यह मधु प्रेम-विलाप-विलास।
बोले—'राधे ! चेत करो, देखो, मैं रहा तुम्हारे पास॥
छोड़ दिया क्यों तुमने वस्तु परसना, होकर व्यर्थ उदास ?।
भूखा मैं यदि रह जाऊँगा, होगी तुम्हें भयानक त्रास'॥
यों कह, मृदु हँस, माधवने पकड़ा राधाका कोमल हाथ।
चौंकी, बोली—'हाय ! हो गयी मुझसे बड़ी भूल यह नाथ !॥
कैसी मैं अधमा हूँ, जो मैं भ्रमसे गयी जिमाना भूल।
व्यर्थ मान बैठी, प्रिय ! तुम हो खेल रहे कालिन्दी-कूल'॥
लगी प्रेमसे पुनः परसने विविध स्वादयुक्त वस्तु ललाम।
भोग लगाने लगे, मधुर-लीला पर हँसकर प्रियतम श्याम॥

(पद-रत्नाकर पद सं० २८१)

सखी ! यह कैसी भूलभई ।
लिखन लगी पाती पिय कौं ले दाड़िम-कलम नई ॥
भूली निज सरूप हौं तुरतहिं, वन घनश्याम गई ।
विरह-विकल वोली पुकार—'हा राधे ! कितै गई ?॥'
पाती लिखी—'प्रिये हृदयेस्वरि ! सुमधुर सु-रसमयी ।
प्रानाधिके ! वेगि आओ तुम नेह-कलह-विजयी' ॥
ठाढे हुते आय मनमोहन, मो तन दृष्टि दई ।
हँसे ठाठय, चेतना जागी, हौं सरमाय गई ॥

(पद-रत्नाकर पद सं० ३७९)

अधिकाँश कवियोंने श्रीकृष्णको आराध्य माना है तथा श्रीराधाको आराधिका। कुछने श्रीराधाको आराध्या मानकर श्रीकृष्णको आराधक माना है। पर श्रीपोद्दारजी दोनोंको ही एक दूसरेके आराध्य मानते हैं। उनकी मान्यताके अनुसार सच्चिदानन्द-स्वरूप भगवान् श्रीकृष्णका आनन्दस्वरूप या ह्लादिनी शक्ति ही राधाके रूपमें प्रकट है। श्रीराधा स्वरूपतः भगवान् श्रीकृष्णके विशुद्धतम प्रेमकी ही अद्वितीय घनीभूत स्थिति हैं। ह्लादिनीका सार है प्रेम, प्रेमका सार मादनाख्य महाभाव है और श्रीराधा मूर्तिमती मादनाख्य महाभावरूपा हैं। श्रीराधा पूर्णतमा शक्ति हैं, श्रीकृष्ण परिपूर्णतम शक्तिमान हैं। शक्ति और शक्तिमानमें भेद तथा अभेद दोनों ही नित्य वर्तमान हैं।

जहाँ श्रीकृष्ण प्रेमी हैं, वहाँ श्रीराधा उनकी प्रेमास्पदा हैं और जहाँ श्रीराधा प्रेमिकाके भावसे आविष्ट हैं, वहाँ श्रीकृष्ण प्रेमास्पद हैं। दोनों ही अपनेमें प्रेमका अभाव देखते हैं और अपनेको अत्यन्त दीन और दूसरेका ऋणी अनुभव करते हैं, क्योंकि विशुद्ध प्रेमका यही स्वरूप है।

दोउ चकोर, दोउ चन्द्रमा, दोउ अलि, पंकज दोउ ।
दोउ चातक, दोउ मेघप्रिय, दो मछरी, जल दोउ ॥
आश्रय - आलंबन दोउ, विषयालंबन दोउ ।
प्रेमी - प्रेमास्पद दोउ, तत्सुख - सुखिया दोउ ॥

लीला - आस्वादन - निरत, महाभाव - रसराज ।
बितरत रस दोउ दुहुन कौं, रचि विचित्र सुठि साज ।।
सहित विरोधी धर्म - गुन जुगपत नित्य अनंत ।
वचनातीत अचिन्त्य अति, सुषमामय श्रीमंत ।।
श्रीराधा - माधव - चरन बंदौं बारंबार ।
एक तत्व दो तनु धरैं, नित - रस - पारावार ।।
(पद-रत्नाकर पद सं० १)

प्राणेश्वरि ! निश्चय ही तू ही है मेरी आत्मा अभिराम ।
तुममें सदा रमण करता मैं, इससे कहते 'आत्माराम' ।।
मेरे तन - मन, मति - गतिकी है एकमात्र तू ही आधार ।
तू ही जीवनका मधुमय रस, तू ही है, बस, जीवन-सार ।।
तू ही है सर्वस्व प्रिये ! है तू ही मेरी जीवन - मूल ।
तब कैसे यह है सम्भव मैं लवभर तुझको जाऊँ भूल ।।
(पद-रत्नाकर पद सं० ५४३)

मेरे तुम, मैं नित्य तुम्हारी, तुम मैं, मैं तुम, सङ्ग - असङ्ग ।
पता नहीं कबसे, मैं तुम बन, तुम मैं बने कर रहे रङ्ग ।।
होता जब वियोग, जब उठती तीव्र मिलन-आकङ्क्षा जाग ।
पल-अमिलन होता असह्य, तब लगती हृदय दहकने आग ।।
चलती मैं रस-सरि उन्मादिनी विह्वल-विकल तुम्हारी ओर ।
चलते उमड़ मिलाने निजमें तुम भी रस-समुद्र तज छोर ।।
लीला-रस - आस्वादन - हित तुम - मैं बनकर वियोग - संयोग ।
धर अनेक रस - रूप रमण - रमणी करते नव-नव सम्भोग ।।
किंतु मैं न रमणी, न रमण तुम, एक परम चिन्मय रस-तत्व ।
आश्रय - विषयरूप हो सुमधुर शोभन सदा शुद्धतम सत्व ।।
(पद-रत्नाकर पद सं० ६१८)

जीवनके अन्तिम १०-१२ वर्षोंमें श्रीपोद्दारजीकी वृत्ति बाह्य जगत्‌को छोड़ देती थी एवं वे भाव-समाधिस्थ रहते थे। अपनी ऐसी स्थितिका उन्होंने सांकेतिक वर्णन इस तरह किया है।

हटे वह सामनेसे, तब कहीं मैं अन्य कुछ देखूँ।
सदा रहता बसा मनमें तो कैसे अन्यको लेखूँ?
उसीसे बोलनेसे ही मुझे फुरसत नहीं मिलती।
तो कैसे अन्य चर्चाके लिये फिर जीभ यह हिलाती?
सुनाता वह मुझे मीठी रसीली बात है हरदम।
तो कैसे मैं सुनूँ किसकी, छोड़ वह रस मधुर अनुपम?
समय मिलता नहीं मुझको टहलसे एक पल उसकी।
छोड़कर मैं उसे, कैसे करूँ सेवा कभी किसकी?
रह गयी मैं नहीं कुछ भी किसीके कामकी हूँ अब।
समर्पण हो चुका मेरा जो कुछ भी था उसीके सब॥

(पद-रत्नाकर पद सं० ४६७)

नाथ! तुम्हारी कितनी करुणा, कैसा अतुल तुम्हारा दान।
हटा असत् मायाका पर्दा, दिया स्वयं ही दर्शन-ज्ञान॥
नहीं रह गया अब तो कुछ भी अन्य छोड़कर तुमको एक।
मिथ्या जगमें रमनेवाले रहे न मिथ्या बुद्धि-विवेक॥
आते लोग सुनाते अपनी विषम समस्याओंकी बात।
सुलझानेको उन्हें, पूछते साधन सविनय, कर प्रणिपात॥
कहूँ उन्हें, समझाऊँ क्या मैं, जब न दीखता कुछ सत् सार।
सुलझानेवाले उस मनको गया सर्वथा लकवा मार॥

(पद-रत्नाकर पद सं० १२०६)

मिले मधुर मुझको, मेरे हो, मेरे वे प्रियतम भगवान।
पूरी हुई साध जीवनकी, पूरे हुए सभी अरमान॥
बुझी सभी विषकी ज्वाला, कर रूप-सुधा-रसका मधु-पान।
हुई विकीर्ण किरण शुचि तनकी दिव्याभामय परम महान॥
छाया अति शीतल प्रकाश सर्वत्र, मिटा सब तम अज्ञान।
दिखने लगे श्यामसुन्दर मन-मोहन अब सर्वत्र समान॥

(पद-रत्नाकर पद सं० ११७७)

मेरे मङ्गलमय रसमय प्रभु रहते नित ही मेरे पास।
देते नव-नव नित्य मधुर आनन्द, विविध कर दिव्य विलास॥
डूबे रहते स्वयं, डुबाये रहते मुझको पारावार—

परम दिव्य रसके, स्वाभाविक करते विशद विशुद्ध विहार ॥
नहीं अन्यको मुझे देखने देते, नहीं देखते आप ।
करते रहते सदा मधुरतम दिव्य मुझसे रस-आलाप ॥
रखा नहीं मुझमें आनेमें किंचित् भेद-भिन्नता-भाव ।
हुआ पूर्ण ऐकात्म्य, मिट गया मिथ्या सब अलगाव-दुराव ॥

(पद-रत्नाकर पद सं० ११८०)

ऐसी स्थिति होनेपर अधिक काव्य-रचना संभव ही नहीं थी । फिर भी वे खड़ी बोलीमें राधा-माधवके प्रेम सम्बन्धी जो पद रचना कर गये हैं वह अभूतपूर्व कही जा सकती है ।

इस तरह हम देखते हैं उनके काव्यकी एक धारामें उनके जीवन-क्रमके दर्शन होते हैं तथा दूसरी धारामें श्रीराधा-कृष्णके स्वरूप-माधुरी एवं लीला-माधुरीके । तीसरी धारा जो इन दोनोंसे कम प्रखर प्रतीत होती है वह है लोक-व्यवहारिक जीवनसे सम्बद्ध परिस्थितियों एवं प्रबोधकी । उदाहरणार्थ चीन द्वारा भारतकी पवित्र भूमिपर किये गये आक्रमणने उनकी समाधि भंग कर दी और 'चीन-दमनकी साधना और सिद्धि' शीर्षक पदमें उनकी उद्बोधक वाणी प्रकट हो गयी । इसी तरह गोरक्षा, देशभक्ति, चेतावनी, लोक व्यवहार, सब जीवोंकी भगवद्भावसे सेवा शुद्ध सात्विक आचरण एवं कुछ कथाओंके उनके काव्यमें दर्शन होते हैं ।

हम कह सकते हैं हिन्दीमें विशाल काव्य रचना हुई है पर 'पद-रत्नाकर' जैसी स्थाई महत्त्वकी काव्यकृति जिसमें एक ही साथ इतने पक्षोंका हृदयस्पर्शी चित्रण है शायद ही अन्यत्र उपलब्ध हो । यह रचना युगों-युगों तक साधकों एवं जन-साधारणका पथ प्रदर्शन करती उन्हें रस-सरितामें अवगाहन कराती रहेगी ।

(सावशेष)

●

श्रीपोद्दारजीके लेख-सग्रहोंका परिचय

श्रीपोद्दारजीका निबन्ध साहित्य अत्यन्त विशाल है। अध्यात्म जगत्के सभी प्रमुख विषयोंपर उन्होंने प्रचुर मात्रामें निबन्ध लिखे। उन्होंने जो भी लिखा भगवद् प्रेरणासे सभी प्राणियोंके कल्याणकी भावनासे लिखा। गभीर-से-गंभीर विषयको सरल भाषामें प्रस्तुत करके जन-साधारणके लिये उसे हृदयग्राही बना देना इनकी विशेषता थी। अपनी अनुभूतियोंको उन्होंने शास्त्रोंका आधार प्रदान करके अभिव्यक्त किया जिससे प्रकारान्तर-से उनके निबन्धोंके द्वारा शास्त्रोंकी ही प्रतिष्ठा हुई। उनकी रचनात्मक प्रतिभाका प्रकाश सभी वर्गोंको सुलभ हुआ। विभिन्न विषयोंसे सम्बद्ध निबन्धोंकी भाषा तथा शैली प्रतिपाद्य विषयके अनुसार बदलती रही। उनके मुख्य लेख-संग्रहोंका संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत किया जा रहा है।

१- श्रीराधा-माधव-चिन्तन

लगभग एक हजार पृष्ठोंका यह विशाल ग्रन्थ आध्यात्मिक जगत्की एवं हिन्दी साहित्यकी एक अमूल्य निधि है। व्रज रसके मधुर भावोपासनाकी यह एक महत्त्वपूर्ण कृति है। महाभाव और रसराज स्वरूप श्रीराधा-कृष्णके स्वरूप एवं तत्त्वका जैसा साङ्गोपाङ्ग विवेचन इस ग्रन्थमें हुआ है वैसा हिन्दी साहित्यमें अन्यत्र उपलब्ध नहीं है। विषयको भलिभाँति हृदयंगम करानेके लिये ग्रन्थको सात प्रकरणोंमें बाँटा गया है—(१) श्रीराधा (२) श्रीकृष्ण (३) राधा-माधव (४) भाव-राज्य और लीलारहस्य (५) प्रेमतत्त्व (६) गोपाङ्गना (७) प्रकीर्ण। केवल संस्कृत साहित्यको छोड़कर ऐसा सर्वाङ्गपूर्ण, सुगम, सरस और प्रामाणिक विवेचनात्मक ग्रन्थ कदाचित् किसी भी भाषामें आजतक नहीं लिखा गया है। इसमें जो कुछ भी विवेचन हुआ है वह वैष्णव-शास्त्र एवं रसिक-सम्प्रदाय

के सिद्धान्तोंद्वारा पूर्णतया सम्मत है। श्रीराधा-कृष्णकी मधुर भावसे उपासना करनेवालोंके लिये यह ग्रन्थ अनुपम पथ-प्रदर्शकका काम करेगा। मधुर भावकी उपासनाके नामपर व्यक्तिगत जीवनमें तथा समाजमें बहुत गंदगी आयी है और आनेकी सम्भावना है। सूरदास आदि कुछ भक्त कवियोंको छोड़कर शेष कवि जिन्होंने श्रीराधा-माधवको अपने काव्यका विषय बनाया, उनकी लीलाओंके बारेमें एक सैद्धान्तिक मापदण्ड न रहनेके कारण, बहुत कुछ पथ भूल गये। हिन्दी साहित्यमें ऐसा प्रचुर काव्य है जिसमें श्रीराधा-कृष्णका लौकिक नायक-नायिकाकी तरह शृङ्गार-वर्णन है। श्रीपोद्दारजीने अपने लेखों द्वारा मति-भ्रम ही दूर नहीं किया—श्रीराधा-कृष्णके उज्ज्वलतम प्रेमका दर्शन कराया है, जिसकी हिन्दी-साहित्य-वाङ्मयमें अत्यन्त आवश्यकता थी।

व्रजके एक रसिक विद्वानने यहाँ तक कहा कि हमारी श्रीराधाका स्वरूप तो ऐसा हो गया था कि उसे शिक्षित वर्ग एवं जन-साधारणके समक्ष रखनेमें कई बार संकोच होता, पर श्रीपोद्दारजीने श्रीराधाका ऐसा स्वरूप रखा कि स्वदेशमें किसीके समक्ष रखनेकी तो बात ही क्या, विदेशमें भी किसीके समक्ष रखनेमें गौरवका बोध होता है।

श्रीराधाके स्वरूपका विवेचन करते हुए श्रीपोद्दारजी लिखते हैं—

"श्रीराधाजी स्वरूपतः श्रीकृष्ण-प्रेमकी एक घनीभूत नित्य चेतन स्थिति हैं। ह्लादिनीका सार प्रेम है, प्रेमका सार मादनाख्य महाभाव है और श्रीराधिका स्वयं मादनाख्य महाभावस्वरूपा हैं। वे प्रत्यक्ष मूर्तिमती ह्लादिनी शक्ति हैं, पवित्रतम प्रेमकी एकमात्र आत्मस्वरूपा अधिष्ठात्री देवी हैं। श्रीकृष्णसुखैकतात्पर्यमयी पवित्रतम नित्य सेवाके द्वारा श्रीकृष्णका आनन्द-विधान ही जिनका एकमात्र कार्य है, वे श्रीराधा कृष्ण-कान्तागणमें सर्वश्रेष्ठ तथा सबकी परमाधाररूपिणी हैं।

श्रीराधा पूर्ण शक्ति हैं। श्रीकृष्ण पूर्ण शक्तिमान् हैं। शक्ति और शक्तिमानमें भेद तथा अभेद दोनों ही माने जाते हैं।

अभेदरूपमें श्रीराधा और श्रीकृष्ण अनादि, अनन्त नित्य एक हैं और वे ही लीला-रसास्वादनके लिये अनादिकालसे नित्य दो स्वरूपोंमें विराजित हैं। श्रीराधा और श्रीकृष्ण दोनों ही परम प्रेमस्वरूप होनेपर भी, लीलारसकी विशेष पुष्टिके लिये श्रीराधामें ही प्रेमकी पूर्णतम अभिव्यक्ति है।

× × × . ×

श्रीराधाजी श्रीकृष्णार्द्धाङ्गसम्भूता होनेसे श्रीकृष्ण स्वरूपा ही हैं। लीलारसास्वादनके लिये द्विविध प्रकाश है। दोनों ही सच्चिदानन्दमय एक तत्त्व-वस्तु हैं। इसमें न स्त्री है न पुरुष। केवल लीला-विलास है, दोनों ही काम-गन्ध-शून्य सच्चिदानन्द भगवद्विग्रह हैं। शुक्र-शोणितजनित-कर्मजनित और पञ्चभूत-निर्मित देह इनके नहीं हैं। अतएव इनमें काम-क्रोधादिके लेशकी कल्पना भी नहीं है। सभी कुछ सच्चिद्घन है।"

गोपियोंके बारेमें श्रीपोद्दारजीने लिखा है—

"श्रीकृष्णकी असंख्य शक्तियोंमेंसे जो शक्तियाँ ह्लादिनी शक्तिकी पुष्टिकारिणी हैं, वे ही श्रीराधाकी सहचरी सखियाँ श्रीगोपियाँ हैं। समस्त गोपीजन उन ह्लादिनी शक्तिकी ही अनन्त विभिन्न प्रतिमूर्तियाँ हैं। उनका जीवन स्वाभाविक ही भगवदर्पित है। उनकी प्रत्येक क्रिया स्वाभाविक ही भगवत्सेवा रूप होती है। उनकी कोई भी चेष्टा ऐसी नहीं होती, जिसमें भगवत्प्रीतिसम्पादनके सिवा, श्रीकृष्ण-राधिकाके मिलनसुखकी साधनाके सिवा अन्य कोई उद्देश्य हो। उनके बुद्धि, मन इन्द्रिय शरीर आत्माके सहित सदा श्रीकृष्णके ही अर्पण हैं। उनके द्वारा निरन्तर श्रीकृष्णकी ही सेवा बनती है।

गोपीभाव 'सर्वसमर्पण'का भाव है। इसमें निज सुखकी इच्छा का सर्वथा त्याग है। गोपीभावमें न लहँगा, साड़ी या चोली पहननेकी आवश्यकता है न पैरोंमें नूपुर और नाकमें नथकी हो। गोपीभावकी प्राप्तिके लिये श्रीगोपीजनोंका ही अनुगमन करना

होगा। भक्तका हृदय भगवान्‌को जब सचमुच अपना 'प्राणनाथ' और 'प्रियतम' मान लेता है, तभी वह गोपीभावकी प्राप्तिके योग्य होता है और ठीक पत्नीकी भाँति जब भगवानको पतिरूपमें वरण कर लिया जाता है, तभी उन्हें 'प्रियतम' और 'प्राणनाथ' कहा जाता है।"

इसीप्रकार प्रेमके सम्बन्धमें श्रीपोद्दारजीका कहना है—

"प्रेम और परमात्मामें कोई अन्तर नहीं; जिस प्रकार वाणीसे ब्रह्मका वर्णन असम्भव है, वेद 'नेति-नेति' कहकर चुप हो जाते हैं, उसी प्रकार प्रेमका वर्णन भी वाणी द्वारा नहीं हो सकता। जिस प्रेमका वर्णन वाणीके द्वारा हो सकता है, वह तो प्रेमका सर्वथा बाहरी रूप है। प्रेम तो अनुभव की वस्तु है।

प्रेमका अनुभव होता है मनमें और मन रहता है सदा अपने प्रेमास्पदके पास। फिर भला, मनके अभावमें वाणीको यत्किंचित् भी वर्णन करनेका असली मसाला कहाँसे मिले। अतएव प्रेमका जो कुछ भी वर्णन मिलता है, वह केवल सांकेतिकमात्र है—बाह्य है। प्रेमकी प्राप्ति हुए बिना तो प्रेमको कोई जानता नहीं और प्राप्ति होनेपर वह अपने मनसे हाथ धो बैठता है।

प्रेम गुणातीत होता है। प्रेममें कुछ भी कामना नहीं होती तथा वह सदा बढ़ता ही रहता है। प्रेममें कहीं परिसमाप्ति नहीं है।"

इस दिव्य प्रेमके स्वरूपका, उसकी प्राप्तिके साधनोंका, मार्गके विघ्नोंका इस ग्रन्थमें विषद वर्णन है।

२- भगवच्चर्चा भाग १ (तुलसीदल)

भगवच्चर्चा नामसे ६ भाग होते हुए भी सभी संग्रह स्वतन्त्र हैं। एक भागसे दूसरे भागका विषयकी दृष्टिसे कोई सम्बन्ध नहीं है। इन्हें स्वतन्त्र पुस्तकें समझना चाहिये।

प्रस्तुत संग्रहमें १६ निबन्ध, ६ गद्यकाव्य एवं २ कविताएँ हैं। निबन्धोंका परिचय देते हुए श्रीपोद्दारजीने प्रारम्भमें लिखा है—"शास्त्रोंकी सम्मति और संतोंके अनुभवयुक्त वचनोंके अनुसार परमात्मा हमें नित्य प्राप्त हैं, परन्तु इस नित्यप्राप्त वस्तुमें भी हमें जो अप्राप्तिका भ्रम हो रहा है, उसे तो दूर करना ही होगा। उसीको दूर करनेके लिये इस पुस्तकके भिन्न-भिन्न निबन्धोंमें कुछ बातें कही गयी हैं। ····· 'मेरा यह दृढ़ विश्वास अवश्य है कि इनके अनुसार चलनेसे सच्चे सुखके अभिलाषी परमार्थ-पथिकको कुछ-न-कुछ लाभ अवश्य ही होगा।"

विशेष महत्वपूर्ण निबन्धोंमें एकका शीर्षक है 'दिव्य सन्देश'। भगवान्के साक्षात् दर्शन एवं उनसे प्रत्यक्ष वार्तालापके समय भगवान्ने सात बातोंका विशेष प्रचार करनेका कहा था। उन्हीं सात बातोंका इस लेखमें स्पष्टीकरण किया गया है। प्रत्यक्ष भगवदीय सन्देश होनेसे इसका शीर्षक 'दिव्य सन्देश' रखा।

दो अन्य महत्वपूर्ण निबन्ध हैं—'श्रीभगवन्नाम' तथा 'गोपीप्रेम'। 'श्रीभगवन्नाम'में सब लोग नामपरायण क्यों नहीं होते, नाम महिमा केवल रोचक वाक्य नहीं, नामका फल, साधकका सकाम भाव, नामके दस अपराध, नाम भजनके कई प्रकार, जपकी विधि आदि विषयोंपर विशेष प्रकाश डाला गया है।

'गोपी-प्रेम'में प्रेमका स्वरूप, गोपी-प्रेम, रूपमाधुरी, मुरली और रास, अधिकार और कर्तव्य आदि प्रसंगोंका विशद विश्लेषण हैं।

इनके अलावा 'भक्ति-सुधा-सागर-तरंग', 'भगवत्प्रेम ही विश्वप्रेम है', 'मोक्ष-सन्यासिनी गोपियाँ' आदि निबन्ध भी बड़े महत्त्वके हैं।

३- भगवच्चर्चा भाग २ (नैवेद्य)

इस संग्रहमें २८ निबन्ध एवं ६ कविताएँ हैं। निबन्धोंके विषयमें श्रीपोद्दारजीने 'निवेदन'में लिखा है— 'इस छोटी-सी

पुस्तिकामें भगवान्के महत्त्वको प्रकट करने तथा उनके प्रति हमारा क्या कर्त्तव्य है, इसीको बतलानेका किञ्चित् प्रयत्न किया गया है।"

विशेष महत्त्वपूर्ण निबन्ध हैं—'गीता और भगवान् श्रीकृष्ण', 'गीतामें व्यक्तोपासना', 'तुम्हारा स्वराज्य' तथा 'भगवान्के विभिन्न स्वरूपोंकी एकता'।

'गीता और भगवान् श्रीकृष्ण' शीर्षक निबन्धमें विवेचन है—भगवान्का तत्त्व भक्तिसे जाना जाता है बुद्धिवादसे नहीं ईश्वरका अवतार, अवतारके विरोधियोंकी दलीलोंके उत्तर, श्रीकृष्ण पूर्ण ब्रह्म भगवान् हैं, साधकोंका कर्त्तव्य, गीताका सदुपयोग और दुरुपयोग, गीता परमधामकी कुंजी है, गीता और प्रेम-तत्त्व आदि विषयोंका।

'गीतामें व्यक्तोपासना'में श्रीपोद्दारजी लिखते हैं—'श्रीमद्भगवद्गीता साक्षात् सच्चिदानन्द परमात्मा प्रभु श्रीकृष्णकी दिव्य वाणी है। जगत्में इसकी जोड़ीका कोई भी शास्त्र नहीं। सभी श्रेणीके लोग इसमेंसे अपने-अपने अधिकारानुसार भगवत्प्राप्तिके सुगम साधन प्राप्त कर सकते हैं। इसमें सभी मुख्य-मुख्य साधनोंका विशद वर्णन है, परन्तु कोई भी एक दूसरेका विरोधी नहीं है। सभी परस्पर सहायक हैं। ऐसा सामञ्जस्यपूर्ण ग्रन्थ केवल गीता ही है। श्रीमद्भगवद्गीताको हम 'निष्काम कर्मयोगयुक्त भक्तिप्रधान ज्ञानपूर्ण अध्यात्मशास्त्र' कह सकते हैं।

'तुम्हारा स्वराज्य'में वे लिखते हैं—'स्वजाति और स्वदेशका प्रेम न होनेके कारण ही हम स्वराज्यसे वञ्चित हैं—इसमें कोई सन्देह नहीं इसलिये प्रत्येक मनुष्यका यह कर्तव्य है कि स्वराज्यकी प्राप्तिके लिये स्वदेश और स्वजातिकी सेवामें तन-मन-धन सब कुछ अर्पण कर दे; क्योंकि स्वराज्य हमारा अनादिसिद्ध अधिकार है।'

'भगवान्के विभिन्न स्वरूपोंकी एकता'में उनका कहना है—

'भगवान्‌का वास्तविक स्वरूप कैसा है, इस बातको भगवान् ही जानते हैं, परन्तु इतना तो निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि भगवान् अनेक रूपों और नामोंसे प्रसिद्ध होनेपर भी यथार्थमें एक ही हैं, भगवान् या सत्य कदापि दो नहीं हो सकते।'

इनके अतिरिक्त 'गीताका पर्यवसान साकार ईश्वरकी शरणागतिमें है' 'क्या ईश्वरके घर न्याय नहीं है' 'चेतावनी' शीर्षक लेख भी बड़े महत्त्वके हैं।

४- भगवच्चर्चा भाग ३

इस संग्रहमें ५० निबन्ध हैं। पहला 'ध्यानयोग' है। इसमें ध्यानकी विधिका विस्तृत वर्णन है। ध्यानके लिये उपयुक्त स्थान, काल, आसन, समय आदिका विशद वर्णन है। अभेद-ध्यानके विस्तृत वर्णनके साथ ही भगवान् शिव, देवी, विष्णु, सीताराम, राम, कृष्ण, राधा-कृष्ण आदिके विभिन्न स्वरूपोंका विस्तारसे वर्णन किया गया है। सभी प्रकारके उपासकोंके लिये उपादेय सामग्री संग्रहीत है।

दूसरा लेख है 'अवतार—तत्त्व'। इसमें अवतार क्या है, अवतार किसका होता है, अवतारका क्या प्रयोजन है, किस उद्देश्यसे अवतार होता है, साधुओंका परित्राण, पापियोंका विनाश और धर्मकी स्थापना तो भगवान् संकल्पसे ही कर सकते हैं—फिर अवतार क्यों लेते हैं, अंशावतार, कलावतार, आवेशावतार पूर्णावतारमें क्या अन्तर है, अवतारकालमें उनको देखकर सभी मोहित क्यों नहीं होते आदि-आदि विषयोंका विस्तारसे प्रश्नोत्तरके रूपमें विवेचन किया गया है। लेखकका इन गम्भीर विषयोंमें कितना गहरा प्रवेश है यह देखते ही बनता है।

एक अन्य महत्वपूर्ण लेख है- 'सद्गुरु'। इसमें श्रीपोद्दारजी-का कहना है—"भारतीय साधनामें गुरु-शरणागति सर्वप्रथम है। सद्गुरुकी कृपा-बिना साधनाका यथार्थ रहस्य समझमें नहीं आ सकता। ······इसलिये श्रुतियोंसे लेकर वर्तमान समयके

संतोंकी वाणीतक सभीमें एक स्वरसे सद्गुरुकी शरणमें उपस्थित होकर अपने अधिकारके अनुसार उनसे उपदेश प्राप्तकर तदनुकूल आचरण करनेका आदेश दिया है।......

यह सब होते हुए भी श्रद्धाको मनमें पूरा स्थान देते हुए भी आजकलके समयमें बहुत ही सावधानीकी आवश्यकता है। आज अवतारों, जगत्-गुरुओं, विश्वोपदेशकों, सद्गुरुओं, ज्ञानियों, योगीराजों और भक्तोंकी देशमें हाट लग रही है। ये सब दुर्लभ पद मोहवश आज बहुत ही सस्ते हो रहे हैं। ऐसे कई व्यक्तियोंके नाम तो यह लेखक ही जानता है, जिनकी खुल्लम-खुल्ला अवतार कहकर पूजाकी जाती है और वे उसको स्वीकार करते हैं।.....

सद्गुरु तो वह है जो शिष्यके मनका अनन्त कोटिजन्म-संचित अज्ञान हरण करता है, जो शिष्यको सन्मार्गपर लगाता है, जो उसके हृदयमें परमात्माके प्रति सच्चे प्रेमके भावोंका विकास करवा देता है।

'हिन्दू-संस्कृतिका स्वरूप' नामक लेखमें श्रीपोद्दारजी लिखते हैं—"जीवनके सभी क्षेत्रोंमें व्याप्त सनातन परम्परासे चली आती हुई अध्यात्मप्रधान धर्ममय सुसंस्कृत 'विचार और आचारप्रणाली' का नाम ही हिंदू-संस्कृति है। हिंदू-संस्कृतिकी यह निर्मल धारा अत्यन्त प्राचीन कालसे अविच्छिन्न रूपमें प्रवाहित है। अतएव हिंदू-संस्कृति सबसे प्राचीन और अपरिवर्तनीय सनातन भारतीय आर्य-संस्कृति है, यही वस्तुतः मानव-संस्कृति है। हिन्दू-संस्कृति-की अन्य संस्कृतियोंसे क्या-क्या विशेषताएँ हैं? इनका विलक्षण विवेचन है।

इनके साथ ही सगुण-निर्गुण तत्त्व, भावराज्यकी महिमा, पुरुषोत्तम-तत्त्व एवं गुरु-तत्त्व आदि गम्भीर विषयोंके साथ-साथ प्राच्य एवं पाश्चात्य संस्कृति, गोरक्षा, दैवी विपत्तियाँ और उनसे बचनेका उपाय आदि सर्वसाधारणके समझने योग्य विषयोंका बड़ा ही मार्मिक विवेचन किया गया है। शिव, विष्णु शक्ति, राम एवं कृष्ण एक ही भगवान्‌के ही विविध रूप हैं तथा उनमें परस्पर

कैसी एकता और सामञ्जस्य है—इसे कई लेखोंद्वारा अत्यन्त सुन्दर ढंगसे समझाया गया है। साथ ही साधकोपयोगी विषयोंपर भी कई लेखोंमें प्रकाश डाला गया है।

५. भगवच्चर्चा भाग ४

इस संग्रहमें ४३ निबन्ध हैं। पहले निबन्ध 'सन्त महिमा'में सन्त कौन हैं, सन्तोंकी पहचान, सन्त और चमत्कार, सन्तोंके स्वभावमें विभिन्नता, गुप्त सन्त और उनके कार्य, सन्तभावकी प्राप्तिके साधन, सन्तभावकी प्राप्तिमें विघ्न, सन्तसे जगत्‌का उपकार और सन्त महिमा आदि विषयोंका विशद विवेचन है। सन्तोंकी महिमा बताते हुए श्रीपोद्दारजी लिखते हैं—"जो उनके सम्पर्कमें आ जाता है, वह पाप—तापसे मुक्त होकर महात्मा बन जाता है। वे जिस देशमें रहते हैं, वह देश पुण्यतीर्थ बन जाता है; वे जो उपदेश करते हैं, वह पावन शास्त्र हो जाता है; वे जिन कर्मोंको करते हैं, वे ही सत्कर्म समझे जाते हैं। वह देश धन्य है, जहाँ ये रहते हैं; वह माता धन्य है, जिसकी कोखसे ये प्रकट होते हैं, वह मनुष्य धन्य है, जो इनके सम्पर्कमें आता है।"

दूसरा निबन्ध है 'निर्भरा भक्ति'। इसमें वे लिखते हैं— 'इस भक्तिमें भक्त स्वाभाविक ही केवल भगवच्चिन्तन-परायण रहता है, शेष सारा काम भगवान् करते हैं। इसके कई स्तर हैं और अधिकारभेदसे उनके पृथक्-पृथक् स्वरूप और उपयोग हैं। निर्भरा भक्तिमें सबसे पहली आवश्यक चीज है 'विश्वास'। भगवान्‌में जिसका यह दृढ़ विश्वास होगा कि भगवान् सर्व शक्तिमान् हैं, सर्वेश्वर हैं, मेरे परम आत्मीय हैं, वही अपने किसी कामके लिये भगवान्‌पर निर्भर करेगा।' साधक इस भक्तिमें कैसे अग्रसर होता है, किन-किन सोपानोंको पार करता है, कहाँ सावधान रहनेकी आवश्यकता है, उसका सांसारिक योगक्षेम कैसे चलता है आदि बातोंको विस्तारसे समझाया गया है।

एक अन्य लेख है 'नैतिक पतन और उससे बचनेका उपाय'। नैतिक पतनके कारणोंका विश्लेषण करते हुए वे लिखते हैं—

"प्रथम तो वर्तमान सरकारने प्रजापर इतने अधिक कर लगा दिये हैं कि उनके बोझसे सब दब गये हैं और किसी भी उपायसे उस कर-भारसे बचना चाहते हैं। ······'सचमुच आजके नैतिक पतनमें यह भयानक कर-भार भी एक प्रधान कारण है। दूसरा कारण है—नियन्त्रण या कण्ट्रोल। नियन्त्रणकी बुराईयोंको अधिकारी लोगोंमेंसे अधिकांश जानते हैं; परन्तु नियन्त्रण बने रहनेमें ही सबका स्वार्थ है, इसलिये विविध युक्तियोंसे नियन्त्रण-की आवश्यकता बतलायी जाती है। नियन्त्रणके कारण ही चोर-बाजारी अधिक होती है।

इसको रोकनेका उपाय है—धर्म तथा भगवान्‌में श्रद्धा उत्पन्न करना, सद्ग्रन्थोंका प्रचार करना, संयमका महत्त्व समझना, स्वार्थबुद्धिका नाश हो ऐसी शिक्षा देना, स्कूल-कालेजोंमें धार्मिक शिक्षाका अनिवार्य करना आदि' ······।

इस संग्रहमें रामायणके मुख्य-मुख्य पात्रोंकी चरित्र-समीक्षा तथा रामायण-विषयक कतिपय अन्य उपयोगी विषयोंका विशेष दिग्दर्शन होनेसे राम-प्रेमी सज्जनोंके लिये यह संग्रह विशेष उपयोगी हो गया है। इनके साथ ही कई लेखोंमें ऐसे विषयोंपर भी प्रकाश डाला गया है, जिनके सम्बन्धमें जिज्ञासुओंको कई प्रकारकी शङ्काएँ हुआ करती हैं।

६. भगवच्चर्चा भाग ५

इस संग्रहमें ४८ निबन्ध हैं। जिस प्रकार चौथे भागमें रामभक्तोंके लिये विशेष सामग्री है उसी प्रकार इसमें कृष्णभक्तोंके लिये अतिशय उपादेय ठोस सामग्रीका समावेश हुआ है। इसमें युगल सरकारकी उपासना एवं ध्यान, माखनचोरीका रहस्य, रासलीलाकी महिमा, व्रजसुन्दरियोंके भगवान्, नादब्रह्ममोहनकी मुरली, अद्भुतकर्मा श्रीकृष्ण, नारदकृत राधास्तवन, श्रीराधिकाजीका उद्धवको उपदेश, श्रीकृष्णलीलाके अन्धानुकरणसे हानि आदि रहस्यपूर्ण विषयोंपर मार्मिक प्रकाश डाला गया है। इनके अध्ययनसे श्रीकृष्णके उपासकोंको अपने मार्गमें बड़ी सहायता मिल सकती है।

पहले लेख 'ईश्वर' शीर्षकमें श्रीपोद्दारजी लिखते हैं—"हमारी बुद्धि जहाँ जाकर थक जाती है और अपनेको आगे बढ़नेमें सर्वथा असमर्थ पाती है, वहींसे भगवत्कृपाका प्रकाश और बल हमारा पथप्रदर्शक और सहायक होकर हमें उस बुद्धिके परे, बुद्धिके अगोचर परम तत्त्वका साक्षात्कार करा देता है। ......ये निराकार भी हैं, साकार भी हैं; निराकार भी नहीं हैं, साकार भी नहीं हैं; सबमें हैं, सबसे परे हैं, उनके लिये यह कहना या समझना कि—'ये ऐसे ही हैं, वस्तुतः उनका उपहास करना और अपनी अक्लका पर्दा-फास करना है। हमारी बुद्धि जिस ईश्वरका वर्णन करती है, वह तो उनके एक बहुत ही स्वल्प-से अंशका, आभासका या अनुमानका ही वर्णन होता है।"

एक महत्वपूर्ण लेख 'मानवताका कल्याण'में वे मानव मात्रसे प्रेमका व्यवहार करनेके लिये कहते हैं। उन्होंने लिखा—"जगत्‌में कोई भी प्राणी 'पर' नहीं है, अतएव द्वेष्य कोई भी नहीं है, सभी प्रेमके पात्र हैं। जो मनुष्य प्राणियोंसे द्वेष करता है, उससे भगवान् कभी प्रसन्न नहीं होते।

मनुष्य जैसा करता है, वैसा ही भोगता है। जो कुछ देता है, वही अनन्तगुना होकर उसे वापस मिलता है—यह नियम है। अतएव एक मनुष्य या एक जाति किसीसे वैर या द्वेष करके उसका बुरा चाहेगी तो बदलेमें उसे भी वैर-द्वेष और बुरा चाहनेवाले ही मिलेंगे।"

दो अन्य उपास्य स्वरूपों—भगवान् शिव एवं भगवती शक्तिका भी बड़ी ही सुन्दर एव शास्त्रानुमोदित शैलीसे विवेचन किया गया है। अन्य लेख भी परम उपयोगी एव मनन करने योग्य हैं।

७. पूर्ण समर्पण (भगवच्चर्चा भाग ६)

इस संग्रहमें ४४ लेख है। इसमें अन्यान्य विषयोंके साथ-साथ श्रीमद्भगवद्गीताके कई महत्वपूर्ण विषयोंपर प्रकाश डाला गया है।

गीतोक्त समग्र ब्रह्म या पुरुषोत्तम, गीतोक्त कर्मयोग और आधुनिक कर्मवाद, गीतामें विश्वरूपदर्शन, गीता और वैराग्य आदि ऐसे विषय हैं जिनका विवेचन गीताप्रेमियोंको विशेष रुचिकर होगा। साथ ही गीताके दो प्रधान पात्र भगवान् श्रीकृष्ण और भक्तवर अर्जुनके चरित्रोंका भी दिग्दर्शन कराया गया है, जिनका अनुशीलन गीताके मर्मको समझनेके लिये परमावश्यक है।

पहला निबन्ध है 'पूर्ण समर्पण'। इसमें समर्पणके विषयका बड़ा गम्भीर विवेचन है। वे लिखते हैं—"वास्तविक पूर्ण समर्पण करना नहीं पड़ता, अपने आप हो जाता है। जबतक कोई समर्पण करनेवाला धर्मी कर्त्ता रहता है, तबतक अहंकार शेष है और तबतक पूर्ण समर्पणमें कमी है। एक ऐसी स्थिति होती है, जबकि देह, इन्द्रिय, प्राण, मन, बुद्धि, अहंकार—इन सबके समष्टि-यन्त्रपर प्रभु अपना अधिकार कर लेते हैं-यह यन्त्र प्रभुका स्वच्छन्द क्रीड़ास्थल या लीलाभूमि वृन्दावन बन जाता है। इस अवस्थामें उनसे भिन्न कर्त्ता नहीं रह जाता। प्रभु उस यन्त्रसे अपने इच्छानुसार मनमाना कार्य लेते हैं—लेते नहीं, उस यन्त्रमें निरंकुश लीला करते हैं।"

एक अन्य महत्वपूर्ण निबन्ध है 'हमारा पुराण-साहित्य'। इसमें हमारे पुराणोंका महत्व, उनकी विशालता, परस्पर विरोधी प्रसङ्गोंका समाधान, उनकी प्रामाणिकता आदि विषयोंका बड़ा मार्मिक विवेचन है। उदाहरणके लिये वे एक स्थानपर लिखते हैं—"एक बात और है, जो बुद्धिवादी लोगोंकी दृष्टिमें प्रायः खटकती है—वह यह है कि पुराणोंमें जहाँ जिस देवता, तीर्थ या व्रत आदिका महत्व बतलाया गया है, वहाँ उसीको सर्वोपरि माना है और अन्य सबके द्वारा उसकी स्तुति करायी गयी है। गहराईसे न देखनेपर यह बात अवश्य वेतुकी-सी प्रतीत होती है; परन्तु इसका तात्पर्य यह है कि भगवान्का यह लीलाभिनय ऐसा आश्चर्यमय है कि इसमें एक ही परिपूर्ण भगवान् विभिन्न-विचित्र लीलाव्यापारके लिये और विभिन्न रुचि, स्वभाव तथा अधिकारसम्पन्न साधकोंके कल्याणके लिये अनन्त विचित्र रूपोंमें नित्य प्रकट हैं। भगवान्के ये सभी रूप नित्य पूर्णतम और सच्चिदानन्द-स्वरूप हैं।

अपनी-अपनी रुचि और निष्ठाके अनुसार जो जिस रूप और नामको इष्ट बनाकर भजता है, वह उसी दिव्य नाम और रूपमेंसे समस्त रूपमय एकमात्र भगवान्‌को प्राप्त कर लेता है; क्योंकि भगवान्‌के सभी रूप परिपूर्णतम हैं और उन समस्त रूपोंमें एक ही भगवान् लीला करते हैं। व्रतोंके और तीर्थोंके सम्बन्धमें भी यही बात है।

'स्वाधीनता या स्वराज्य' शीर्षक निबन्धमें श्रीपोद्दारजी लिखते हैं—"मनुष्य सामाजिक प्राणी है और समाजबद्ध होकर रहनेमें सभीको कुछ-न-कुछ परतन्त्रता स्वीकार करनी पड़ती है। परंतु मनुष्यके यथेच्छाचारी हो जानेपर समाजकी यह शृङ्खला टूट जाती है और फलतः दुःख-ही-दुःख आ जाते हैं। स्वाधीनताके इस विकृत स्वरूप यथेच्छाचारका ही यह फल है कि आज कहीं भी व्यवस्था या अनुशासनका सम्मान नहीं है। पिता-पुत्रमें, मा-बेटीमें, गुरु-शिष्यमें, राजा-प्रजामें, मालिक-नौकरमें, पति-पत्नीमें, सास-पतोहूमें और भाई-भाईमें अनवरत मनोमालिन्य और असद्भाव पैदा हो गया है। इसीसे आज राष्ट्रगत, समाजगत, परिवारगत और व्यक्तिगत सब प्रकारकी सुख-शान्ति नष्ट होती जा रही है।"

इनके अतिरिक्त अन्य कई उपयोगी निबन्ध हैं—'राजनीतिक आन्दोलनमें भाग लेनेवाले भाई बहिनोंसे—'प्रेमकी पराकाष्ठा', 'विनाशके पथपर', 'साहित्यका सदुपयोग', 'आजका भ्रष्टाचार और उससे बचनेका उपाय'।

८. मानव-जीवनका लक्ष्य

इस संग्रहमें विभिन्न आध्यात्मिक विषयोंके साथ-साथ अतिशय उपादेय ठोस सामग्रीका समावेश हुआ है। पहला लेख है—मानव-जीवनका लक्ष्य—भगवत्प्राप्ति। इसमें श्रीपोद्दारजी लिखते हैं—"हम सभी आत्यन्तिक सुख चाहते हैं। ऐसा सुख चाहते हैं जो अनन्त हो, परंतु चाहते वहाँसे हैं, जहाँ सुख है नहीं। ..... जगत्‌से सुख-प्राप्तिकी दुराशामें जीव सतत जगत्‌का चिन्तन करता है और अपने अंदर अनवरत गंदा कूड़ा भरता चला जाता है। मनुष्यकी अन्तरात्मा जलती रहती है। जागतिक

गीतोक्त समग्र ब्रह्म या पुरुषोत्तम, गीतोक्त कर्मयोग और आधुनिक कर्मवाद, गीतामें विश्वरूपदर्शन, गीता और वैराग्य आदि ऐसे विषय हैं जिनका विवेचन गीताप्रेमियोंको विशेष रुचिकर होगा। साथ ही गीताके दो प्रधान पात्र भगवान् श्रीकृष्ण और भक्तवर अर्जुनके चरित्रोंका भी दिग्दर्शन कराया गया है, जिनका अनुशीलन गीताके मर्मको समझनेके लिये परमावश्यक है।

पहला निबन्ध है 'पूर्ण समर्पण'। इसमें समर्पणके विषयका बड़ा गम्भीर विवेचन है। वे लिखते हैं—"वास्तविक पूर्ण समर्पण करना नहीं पड़ता, अपने आप हो जाता है। जबतक कोई समर्पण करनेवाला धर्मी कर्त्ता रहता है, तबतक अहंकार शेष है और तबतक पूर्ण समर्पणमें कमी है। एक ऐसी स्थिति होती है, जबकि देह, इन्द्रिय, प्राण, मन, बुद्धि, अहङ्कार—इन सबके समष्टि-यन्त्रपर प्रभु अपना अधिकार कर लेते हैं—यह यन्त्र प्रभुका स्वच्छन्द क्रीड़ास्थल या लीलाभूमि वृन्दावन बन जाता है। इस अवस्थामें उनसे भिन्न कर्त्ता नहीं रह जाता। प्रभु उस यन्त्रसे अपने इच्छानुसार मनमाना कार्य लेते हैं—लेते नहीं, उस यन्त्रमें निरंकुश लीला करते हैं।"

एक अन्य महत्वपूर्ण निबन्ध है 'हमारा पुराण-साहित्य'। इसमें हमारे पुराणोंका महत्व, उनकी विशालता, परस्पर विरोधी प्रसङ्गोंका समाधान, उनकी प्रामाणिकता आदि विषयोंका बड़ा मार्मिक विवेचन है। उदाहरणके लिये वे एक स्थानपर लिखते हैं—"एक बात और है, जो बुद्धिवादी लोगोंको दृष्टिमें प्रायः खटकती है—वह यह है कि पुराणोंमें जहाँ जिस देवता, तीर्थ या व्रत आदिका महत्व बतलाया गया है, वहाँ उसीको सर्वोपरि माना है और अन्य सबके द्वारा उसकी स्तुति करायी गयी है। गहराईसे न देखनेपर यह बात अवश्य बेतुकी-सी प्रतीत होती है; परन्तु इसका तात्पर्य यह है कि भगवान्‌का यह लीलाभिनय ऐसा आश्चर्यमय है कि इसमें एक ही परिपूर्ण भगवान् विभिन्न-विचित्र लीलाव्यापारके लिये और विभिन्न रुचि, स्वभाव तथा अधिकारसम्पन्न साधकोंके कल्याणके लिये अनन्त विचित्र रूपोंमें नित्य प्रकट हैं। भगवानके ये सभी रूप नित्य पूर्णतम और सच्चिदानन्द-स्वरूप हैं।

अपनी-अपनी रुचि और निष्ठाके अनुसार जो जिस रूप और नामको इष्ट बनाकर भजता है, वह उसी दिव्य नाम और रूपमेंसे समस्त रूपमय एकमात्र भगवान्‌को प्राप्त कर लेता है; क्योंकि भगवान्‌के सभी रूप परिपूर्णतम हैं और उन समस्त रूपोंमें एक ही भगवान् लीला करते हैं। व्रतोंके और तीर्थोंके सम्बन्धमें भी यही बात है।

'स्वाधीनता या स्वराज्य' शीर्षक निबन्धमें श्रीपोद्दारजी लिखते हैं—"मनुष्य सामाजिक प्राणी है और समाजबद्ध होकर रहनेमें सभीको कुछ-न-कुछ परतन्त्रता स्वीकार करनी पड़ती है। परंतु मनुष्यके यथेच्छाचारी हो जानेपर समाजकी यह शृङ्खला टूट जाती है और फलतः दुःख-ही-दुःख आ जाते हैं। स्वाधीनताके इस विकृत स्वरूप यथेच्छाचारका ही यह फल है कि आज कहीं भी व्यवस्था या अनुशासनका सम्मान नहीं है। पिता-पुत्रमें, मा-बेटीमें, गुरु-शिष्यमें, राजा-प्रजामें, मालिक-नौकरमें, पति-पत्नीमें, सास-पतोहूमें और भाई-भाईमें अनवरत मनोमालिन्य और असद्भाव पैदा हो गया है। इसीसे आज राष्ट्रगत, समाजगत, परिवारगत और व्यक्तिगत सब प्रकारकी सुख-शान्ति नष्ट होती जा रही है।"

इनके अतिरिक्त अन्य कई उपयोगी निबन्ध हैं—'राजनीतिक आन्दोलनमें भाग लेनेवाले भाई बहिनोंसे—'प्रेमकी पराकाष्ठा', 'विनाशके पथपर', 'साहित्यका सदुपयोग', 'आजका भ्रष्टाचार और उससे बचनेका उपाय'।

८. मानव-जीवनका लक्ष्य

इस संग्रहमें विभिन्न आध्यात्मिक विषयोंके साथ-साथ अतिशय उपादेय ठोस सामग्रीका समावेश हुआ है। पहला लेख है—मानव-जीवनका लक्ष्य—भगवत्प्राप्ति। इसमें श्रीपोद्दारजी लिखते हैं—"हम सभी आत्यन्तिक सुख चाहते हैं। ऐसा सुख चाहते हैं जो अनन्त हो, परंतु चाहते वहाँसे हैं, जहाँ सुख है नहीं। ····· जगत्‌से सुख-प्राप्तिकी दुराशामें जीव सतत जगत्‌का चिन्तन करता है और अपने अंदर अनवरत गंदा कूड़ा भरता चला जाता है। मनुष्यकी अन्तरात्मा जलती रहती है। जागतिक

ऐश्वर्यसे परिपूर्ण, सुख-सुविधाओंसे सम्पन्न धनी-मानी लोग भी जलते हैं, उच्च राज्याधिकारी और उद्भट विद्वान् भी जलते हैं, शान्तिकी बात करनेवाले उपदेशक और तर्कशील दार्शनिक भी निरन्तर जलते हैं।

इससे छूटनेके लिये शास्त्रोंने बड़ी सुन्दर युक्ति बतायी है। जो बीत गया, उसपर कोई अधिकार नहीं। 'वर्तमान' साधकके हाथमें है। मनरूपी गोदाममें अबतक जो कूड़ा भरा गया, सो भरा गया। अब उसमें अभीसे भगवद्भावोंको, भगवत्प्रीति-उत्पादक शुभ कर्मोंको भरते जायँ।'

व्रज-रसकी साधनाके सम्बन्धमें कई लेख अत्यन्त उपयोगी है। रस (प्रेम) साधनकी विलक्षणता, विलक्षण भाव-जगत्, चरम और परम उपासनाका सुधा मधुर-फल-भगवत्प्रेम, रास-रहस्य, भक्तका एकाङ्गी प्रेम, श्रीकृष्ण-महिमाका स्मरण, श्रीराधा-माधवका मधुर रूप-गुण-तत्त्व, श्रीराधा-माधव-युगलोपासना– शीर्षक लेख इस संदर्भमें माननीय है। इस साधनाकी विलक्षणता बताते हुए वे लिखते हैं—

"स्वरूपतः तत्त्व एक होनेपर भी रसरूप भगवान् और रसकी साधना– प्रेम-साधना कुछ विलक्षण होती है। रस-साधनामें एक विलक्षणता यह है कि उसमें आदिसे ही केवल माधुर्य-ही-माधुर्य है। जगत्में दुःख-दोष देखकर जगत्का परित्याग करना, भोगोंमें विपत्ति जानकर भोगोंको छोड़ना, संसारको असार समझकर इससे मनको हटाना—ये सभी बातें अच्छी हैं, बड़े सुन्दर साधन हैं, होने भी चाहिये। पर रसकी साधनामें कहींपर भी खारापन नहीं रहता। प्रेमकी रसकी साधना स्वाभाविक चलती है रागको लेकर। रस ही राग है, राग ही रस है। अतः भगवान्में अनुरागको लेकर रसकी साधनाका प्रारम्भ होता है। एकमात्र भगवान्में अनन्य राग, तो अन्यान्य वस्तुओंमें रागका स्वाभाविक ही अभाव हो जाता है।

[रस (प्रेम) साधनकी विलक्षणता]

'भक्ति-तत्त्वका दिग्दर्शन' शीर्षक लेखमें भक्ति-तत्त्वका विश्लेषण अत्यन्त मार्मिक ढंगसे विस्तारपूर्वक किया गया है।

अधिकारी, सम्बन्ध, सम्बन्ध-तत्त्वमें अवतारवाद, सम्बन्ध-तत्त्वमें श्रीकृष्ण, श्रीकृष्णका ऐश्वर्य और माधुर्य, अभिधेय तत्त्व, साधु-सङ्ग, शरणागति, साधन-भक्ति, भक्तिके प्रकार, प्रयोजन-तत्त्व आदि सभी तत्त्वोंका विस्तारसे विवेचन किया गया है।

कुछ अन्य महत्त्वपूर्ण लेख हैं—मानव-जीवनका उद्देश्य और छात्रों तथा सरकारसे प्रार्थना, मृत्युके समय क्या करें ?, भारतीय चार आश्रमोंके धर्म और पालनीय नियम, दीन-दुखियोंके प्रति कर्त्तव्य।

८. अमृत-कण

यह ८८ निबन्धों, संस्मरणों आदिका संग्रह है। श्रीपोद्दारजी-की लेखनी सामयिक समस्याओंपर भी सतत चलती थी। लिखते समय सरकारसे भी उन्हें कोई भय नहीं था। सत्यपर निर्भीकता-पूर्वक लिखना उनका स्वभाव था। उसके लिये यदि सरकारके विपक्षमें भी लिखना पड़े तो वे कभी हिचकते नहीं थे। उनकी दृष्टिमें सबका यथार्थ कल्याण किसमें है—यह बात सर्वोपरि थी।

आजके जनतन्त्रपर उनके विचार 'जनतन्त्र या असुरतन्त्र' शीर्षक लेखमें विचारणीय है। वे लिखते हैं—

"प्रथम तो सबको मत देनेका अधिकार तथा बहुमतसे चुनावकी पद्धति ही गलत है, क्योंकि जनसमूहका मत कभी गम्भीर विचारपूर्ण तथा गहरी समझदारीका नहीं हुआ करता। जनसमूह-का विचार तो बनाया जाता है और जिधरकी हवा जोरकी चलती है, उधर ही समूह चल पड़ता है। इसीसे जनसमूहके मतका कोई नियत मूल्य नहीं आँका जाता।

अतएव बहुमतकी पद्धति यथार्थ प्रतिनिधिका चुनाव करनेमें समर्थ नहीं होती। फिर यहाँ तो बहुमत भी किसको समझा जाय और किनको बहुमतसे निर्वाचित प्रतिनिधि माना जाय। मान लीजिये कहीं एक हजार मत है—उसमें एक ओर ५०१ मत है और विपक्षमें ४९९ है, बराबर मतमें एक मतका अन्तर है, तो क्या एक मत अधिक होनेसे वे वास्तवमें एक हजारकी पूर्ण जनताके

प्रतिनिधि हैं ? आजकल और भी गड़बड़ी है। मान लें एक हजार मत है और छः प्रत्याशी हैं। पाँच प्रत्याशी १५०-१५० या कुछ कम-ज्यादा, कुल मिलाकर ७५० मत प्राप्त करते हैं, एकको २५० मत मिल जाते हैं और चूँकि वे पाँचों ही २५० से कम मत प्राप्त करते हैं, इससे २५० वाले चुन लिये जाते हैं। पर वस्तुतः क्या वे बहुमतसे चुने गये हैं ? तीन चतुर्थांश मत उनके विरुद्ध है, केवल एक चतुर्थांश उनके पक्षमें है। इसपर भी वे वहाँकी प्रजाके बहुमतसे चुने हुए प्रतिनिधि माने जाते हैं। यह यथार्थ प्रतिनिधित्व है या प्रतिनिधित्वका उपहास ? विचारणीय विषय है।

······'पत्थर, ईंट बरसाना साधारण-सी बात हो गयी। लाठियाँ चली, गोलियोंकी बौछार हुई, कई जगह घर फूँके गये, पोलिंगके खेमेमें आग लगा दी गयी। गन्दे नारे लगाना, गालियाँ बकना तो आम बात थी। तामसिकताका यह ताण्डव नृत्य जनतंत्र या लोकतन्त्रके नामपर हुआ। बड़ी ही लज्जाकी—डूब मरनेकी बात है।

······'मत प्राप्त करनेमें अन्य बहुत प्रकारके जघन्य साधनोंके समाचार मिले हैं। यदि यह सब सत्य है तो कहना ही पड़ेगा कि हमारा घोर पतन हो गया है और हम उत्तरोत्तर और भी पतनके गर्तमें गहरे गिरे जा रहे हैं। यह सब हो रहा है देश-सेवाके पवित्र नामपर और जनतन्त्रके नामपर।"

इसी तरह माँसाहारके विषयमें वे लिखते हैं—"सरकार भी साहित्यसे, बूचड़खानोंके विस्तारसे और मछली-सूअर-मुर्गी उद्योगोंके नामपर योजनाएँ बना-बनाकर माँसाहारके घृणित और पतनकारी प्रचार-प्रसारमें जोरोंसे लग रही है। अण्डे और मछली-तकको निरामिष बताया जाता है और लाभ बता-बताकर अण्डोंका प्रचार किया जाता है। पशुओंके अङ्गोंसे दवा बनानेके कारखाने तो बहुत हो गये हैं और वे उत्तरोत्तर बढ़ ही रहे हैं। इसके लिये सरकारी योजना है। यह परम दुर्भाग्य है।

माँस खानेवाले हिंदू भी गोमाँससे तो बड़ी घृणा करते थे; पर आजकल वह घृणा भी निकलती जा रही है। विदेशोंमें

यातायात बढ़ जानेसे, दुष्ट-सम्पर्कसे तथा धार्मिक बुद्धिके सतत ह्रासमे स्वाभाविक ही यह हो रहा है। जहाँ माँस-गोमाँस पकाये जाते हैं, वहीं उन्हीं बरतनोंमें निरामिष भोजन करनेवाले हिंदुओंके लिये अन्न पकाया जाता है और निरामिषभोजी भाई-बहिन बड़े चावसे उन्हीं बरतनोंमें उसे खाते हैं। अभी समाचार मिला है कि विपुल धनराशि खर्च करके सरकारके द्वारा बनाये हुए दिल्लीके प्रसिद्ध 'अशोक होटल'में जिसमें बड़ी शानसे ऊँचे घरानेके सम्भ्रान्त निरामिषहारी हिंदू (सनातन-धर्मावलम्बी भी ठहरते हैं, गोमाँस-का व्यवहार किया जाता है।

......जहाँतक हो सके, तुरंत ही पूर्ण निश्चय करके माँसाहारसे बचना-बचाना चाहिये। नहीं तो त्यागी, तपस्वी, सदाचारी, सात्त्विकाहारी ऋषिमुनियोंका यह पवित्र देश क्रूर पिशाचोंकी क्रीड़ाभूमि बन जायेगा और यहाँ पैशाचिक ताण्डव होने लगेगा।

('माँसाहार तथा गोमाँसका घृणित प्रचार' शीर्षक लेखसे)

वर्तमानकी पतनोन्मुखी स्थितिके बारेमें वे लिखते हैं—

"अर्थ तो सभी जगह प्रधान आसनपर आरूढ़ है। इसीसे आज अखण्ड भारतकी अखण्डता नष्ट हो रही है और जगह-जगह भाषा तथा प्रान्तके नामपर काट-छाँट और उपद्रव हो रहे हैं और परस्परके वैमनस्य तथा अविश्वाससे जन-जीवन दुःखी हो रहा है। वर्तमान पाकिस्तान, नये पाकिस्तान-ईसाईस्तानोंके लिये गुप्त योजना और प्रचार, पजाबके दो खण्ड करनेकी बात, आसाममें स्वतन्त्र पहाड़ी राज्यका प्रस्ताव, बेरुबाड़ीका प्रदान, एक प्रान्तके स्थान दूसरे प्रान्तको देने-लेनेकी योजना आदि इसके प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। हम मान रहे हैं—प्रगति हो रही है, पर वस्तुतः हो रहा है—घोर पतन! इसीसे अशान्ति, द्वेष, दंभ तथा दुःखके बादल उमड़े आ रहे हैं।

इसी पतनोन्मुखी दृष्टिसे पैसेके लिये खान-पानकी चीजोंमें मिलावट, नकली दवाइयोंका निर्माण, घूसखोरी, नैतिकतापर खुला

आघात करनेवाले पतनकारी साहित्यका प्रकाशन, गंदे सिनेमाओंका घोर प्रचार, नर-नारियोंके मनोंमें सहज ही विकार उत्पन्न करनेवाले, सिनेमाके पात्र-पात्रियोंके चित्रोंका प्रकाशन और गंदे पोस्टर आदिका विस्तार हो रहा है और इन साधनोंके द्वारा प्रकारान्तरसे समाजमें दुराचारोंका प्रबल प्रसार हो रहा है। घृणा तो निकल ही गयी है। दुराचारोंमें गौरव बुद्धि हो गयी है।

.. .. .. मनोरञ्जन तथा कला तो धोखा देनेकी चीज है। जैसे शराबके गुण बनाकर शराबके व्यसनको दृढ़ कर दिया जाता है, वैसे ही वर्तमान सिनेमाओंके ये नाम तो इस दुर्व्यसनकी वृद्धिके लिये ही रक्खे गये मालुम होते हैं।"

(पतनकारी सिनेमा पोस्टरोंका विरोध परमावश्यक)

'एंटीबायोटिक दवाओंके कारखाने रोगनाशकके लिये या विस्तारके लिये !' शीर्षक लेखमें वे लिखते हैं—

"जहाँ डाक्टर-वैद्योंका व्यवसाय खूब चलता हो, दवाओंके कारखानें तथा बाजार प्रगतिपर हों, दवा व्यवसाय बहुत लाभदायक हो, वहाँ निश्चित ही बीमारोंकी तथा बीमारियोंकी संख्या बढ़ी हुई है और लोग संयमी न रहकर दवा-दास हो रहे हैं। हमारे भारतमें इस समय दवा-उद्योग उत्तरोत्तर उन्नत होता चला जा रहा है, आयुर्वेदिक औषध-निर्माणके बड़े-बड़े व्यवसाय चल ही रहे थे अब करोड़ोंकी पूँजी लगाकर सरकार एंटीबायोटिक औषधोंके निर्माणके बहुत बड़े कारखाने खोलने जा रही है। जिनमे एक तो भारतकी प्रसिद्ध तपोभूमि ऋषिकेशमें खोला जाने वाला है।

.....'जितनी भी एंटीबायोटिक दवाएँ हैं, सभी प्रायः विष हैं ! सभीपर प्रायः विष (Poison) का लेबल लगा रहता है। अतएव वे किसी एक रोगको दबाती हैं तो दूसरेको उसी समय या कालान्तरमें पैदा भी करती हैं। विषका प्रभाव तो होता ही है। अभी उस दिन एक खेतमें कीटाणुनाशक दवा छिड़की गयी थी, उसके कुछ ही घंटों बाद वहाँ काम करनेवाले पचासों व्यक्ति बेहोश हो गये। उनको होशमें लानेके लिये बड़ी चिन्ता और उपाय

करने पड़े। इसी प्रकार इन दवाओंका भी विषैला असर शरीरपर होता ही है। यह गहराईसे सोचनेका विषय है कि ये बड़े-बड़े एंटीबायोटिकके कारखाने देशमें रोगका विनाश करेंगे या विस्तार? और इनसे यदि रोगविस्तारकी सम्भावना हो तो सरकारको भी इसपर एक बार फिर विचार करना चाहिये। विचारशील पुरुष इस ओर ध्यान दें इसलिये ये पंक्तियाँ लिखी गयी हैं।

इसीके साथ-साथ बड़े-बड़े व्यवसायी उद्योगपतियोंसे भी यह प्रार्थना है कि वे पैसेके लोभसे हिंसाभरे तथा अपवित्र पदार्थोंके द्वारा विषैली दवाओंके निर्माणके लिये कारखाने खोलकर और देश-भरमें उन दवाओंका प्रचार करके देशका तथा अपना मङ्गल कर रहे हैं या अमङ्गल? इसपर जरा ध्यान दें। पैसा ही सब कुछ नहीं है। यह बात याद रखनी चाहिये।"

इसी तरह 'चीनपर पूर्ण विजय प्राप्त करनेके लिये आध्यात्मिक साधन भी किये जाँय', 'धर्मयुद्ध — भगवत्प्राप्तिका साधन', 'पाकिस्तान-युद्ध और हमारा कर्तव्य', 'पाकिस्तान-चीन-संघर्षमें हमारा कर्तव्य तथा विजय और विश्वशान्तिके साधन', 'हिन्दू साधु - संन्यासियोंके लिये कानून' शीर्षक लेख तत्कालीन परिस्थितियोंमें जन-मानसमें जागृति उत्पन्न करनेके लिये मनन करने योग्य लेख हैं।

दहेजका अभिषाप जो हमारे समाजकी निरपराध युवतियोंका प्राणघातक एवं असहनीय कष्टदायक सिद्ध हो रहा है—श्रीपोद्दारजी-की तीव्र भर्त्सनाका विषय रहा।' विवाहमें दहेज पुस्तक लिखनेके अलावा वे समय-समयपर 'कल्याण'में इसके लिये हृदय-स्पर्शी शब्दोंमें लिखते रहे। 'दहेजका बढ़ा हुआ पाप' शीर्षक लेखमें वे लिखते हैं—

'पता नहीं हमारी मनोवृत्ति कितनी नीची हो गयी है। मुझे बड़ा आश्चर्य होता है, जब कालेजोंके सुशिक्षित प्रगतिशील युवक गरीब कन्याके पितासे दहेजके लिये अड़ जाते है। रुपया इतनी बड़ी चीज बन गया है कि उसके सामने ईश्वर, धर्म और मनुष्यत्व

कुछ भी नहीं रह गया। क्या देशमें दया, धर्म और मानवता इतनी उठ गयी कि जिससे आज पैसोंके अभावसे हजारों - लाखों कन्याओंको क्वारी रहना पड़ रहा है, माता-पिताके दुःखको देखकर आत्मघात कर लेती हैं और कहीं-कहीं तो माता-पिता भी मर जाते हैं। मैं ईश्वर और मानवताके नामपर देशके लोगोंसे, लड़कोंसे और उनके अभिभावकोंसे अपील करता हूँ कि वे दहेज न लेनेकी प्रतिज्ञा करें और अपनेको तथा समाजको इस बढ़ते हुए पाप और दुःखसे बचावें।"

इस संग्रहमें सामयिक लेखोंके अलावा आध्यात्मिक गम्भीर लेख भी पर्याप्त हैं। शिवपुराणमें शिवका स्वरूप', 'शिवतत्त्व और शैवोपासना.' 'योगवासिष्ठका साध्य-साधन,' 'ब्रह्मवैवतपुराणके श्रीकृष्ण', पुराणोंमें दिव्य उपदेश,' 'भगवान् बुद्धदेव और उनका सिद्धान्त', 'सत्कथाका महत्व', आदि लेख मनन करने योग्य हैं।

१०. सुखी बननेके उपाय

यह श्रीपोद्दारजीके २८ लेखों, संस्मरणों आदिका संग्रह है। पहले लेख 'धर्मके विविध रूप' में वे लिखते हैं—

"जो सबका धारण करे और जिससे अभ्युदय तथा निःश्रेयसकी सिद्धि हो वह धर्म है। सब लोग एक परिस्थितिमें नहीं रहते। एक ही व्यक्ति सदा एक-सी परिस्थितिमें नहीं रहता। पूरे समाज एवं देशमें भी परिस्थितियाँ बदलती रहती हैं।

इसलिये धर्म नानारूपात्मक है। वह एक होकर भी अनेकरूप है। अनेकतामें एकत्वका दर्शन-यही सृष्टिके परम तत्वका दर्शन है।

... ... आज करोड़ों वर्ष व्यतीत होनेपर भी सनातन धर्म केवल जीवित ही नहीं है, समस्त विकृतियों तथा बाह्य आघातोंके निरन्तर थपेड़े सहनेपर भी उसमें अपने अधिकारानुरूप धर्मका आचरण करनेवालोंकी एक बड़ी संख्या है, जबकि विश्वमें एक ग्रन्थ, एक गुरु, एक उपासना-पद्धतिको ही धर्म माननेवाले अनेक सम्प्रदाय जनमे और नष्ट हो गये।

... . सबके अभ्युदय-निःश्रेयसके साधनोंमें जो समत्व है, उसे दृष्टिमें रख कर सबके लिये धर्मके कर्तव्य कर्मके जो मुख्य-मुख्य भेद हैं, उनकी ही चर्चा यहाँ की जा रही है।"

इसके पश्चात् उन्होंने नित्य-कर्म, नैमित्तिक कर्म, सामान्य धर्म, विशेष धर्म काम्यकर्म या धर्म, आपधर्म आदिका अत्यन्त सुन्दर ढंगसे वर्णन किया है।

'राजनीति, धर्म और तीर्थ' शीर्षक लेखमें वे लिखते हैं—

"दैव-दुर्विपाकसे या किसी भी कारणसे आजके जगत्के मानव-समाजकी बुद्धि प्रायः तमसाच्छन्न हो रही है, इसीसे आज सारा जगत् ईश्वर तथा सच्चे ईश्वरीय धर्मसे मुँह मोड़कर 'अधिकार' और 'अर्थ'के पीछे उन्मत्त हो रहा है।

... कूटनीतिकी चालोंसे अनभिज्ञ और आदर्शवादके उत्साहसे परिपूर्ण तथा सफलता प्राप्तिके लिये उत्सुक तरुण राजनीतिज्ञ अपने दल या समुदायके टिकटपर कांग्रेस, लोकसभा या प्रतिनिधि—सभामें चुन लिये जानेके पश्चात् तुरंत ही अपने-आपको एक उलझनमें पाता है।

अब उसके सामने दो ही मार्ग रहते हैं—या तो वह अपने दलके नेताओं—पापमें अभ्यस्त खसूटोंके विरुद्ध—जो न तो इस जीवनमें और मृत्युके बाद भी उसे क्षमा करेंगे—खड़ा हो और अपनेको रङ्गमञ्चके पीछे—नेपथ्यमें फेंका हुआ पाये, जहाँसे वह अपनी तरुण उत्सुकतापूर्ण आवाजको सुनानेके लिये कोई अवसर ही न पा सके, या वह उन नेताओंके अनुकूल बनकर उन्हींकी भाँति समादृत होकर रहे, जिससे अन्तमें कदाचित् वह 'पद' रूप प्रसादसे पुरस्कृत किया जाय।

... . आज बहुत-से लोग- पीछे नहीं—पहलेसे ही पद' और 'अर्थ'की अभिलाषासे ही लोकसभा आदिमें जाना चाहते हैं। 'कर्तव्य और त्याग'का पवित्र आसन ही आज 'अधिकार और अर्थ'

के द्वारा अधिकृत कर लिया गया है। ऐसी अवस्थामें धर्मको राजनीतिके साथ स्थान मिलना बहुत ही कठिन है।"

कुछ और विशेष महत्वपूर्ण लेख हैं—'महत्वपूर्ण उपासना-सर्वभूत हित', 'दया धर्मका स्वरूप', 'विश्वास धर्म—भगवानका प्रत्येक विधान मङ्गलमय', 'परहित-धर्म', 'भगवन्नाम सर्वोपरि तीर्थ, आदि।

११. भवरोगकी रामबाण दवा

इस संग्रहमें दस लेख दो खण्डोंमें संग्रहीत है। इसमें ऐसे दस गुणोंका वर्णन किया गया है जिनके नाम सकारसे प्रारम्भ होते हैं। ये सभी गुण ऐसे हैं, जिन्हें धारण करनेसे मनुष्य थोड़े ही समयमें सारे मानसिक रोगोंसे मुक्त होकर परम स्वस्थ—आत्म-कल्याणका अधिकारी बन सकता है। इनकी विशेषता यह है कि मनुष्य चाहे किसी देश, किसी धर्म, किसी वर्ण, किसी जाति और किसी सम्प्रदायका क्यों न हो वह इनसे लाभ उठा सकता है। इस दृष्टिसे यह पुस्तक सबके कामकी है। कोई चाहे तो केवल इस पुस्तकको आधार एवं पथप्रदर्शक बनाकर दुस्तर भवसागरको अनायास ही पार कर सकता है। ये सभी प्रयोग समस्त धर्मों एवं सभी शास्त्रोंके सम्मत होनेके साथ-साथ लेखकके द्वारा प्रायः स्वयं अनुभूत हैं। अतः इनकी सफलताके विषयमें सन्देह नहीं है। पुस्तककी भाषा बड़ी सरल एवं मार्मिक है।

लेखोंके शीर्षक है—सहिष्णुता, सेवा, सम्मानदान, स्वार्थत्याग, समता, सत्संग, सदाचार, सन्तोष, सरलता और सत्य। प्रत्येक लेखमें विषयका विवेचन बहुत विस्तारसे किया गया है। जिससे सर्वसाधारणके लिये उसकी उपादेयता बढ़ गयी है। उदाहरणार्थ 'सहिष्णुता' शीर्षक लेखमें श्रीपोद्दारजी लिखते हैं—

"सहिष्णुताका अर्थ है तितिक्षा या सहनशीलता। सहनशीलता-के मुख्य चार अङ्ग हैं—१. द्वन्द्वसहिष्णुता, २. वेग-सहिष्णुता, ३. परोत्कर्ष सहिष्णुता और ४. पर-मत सहिष्णुता।" इसके पश्चात्

इनका स्वरूप तथा इनकी प्राप्तिके साधनका विवेचन है। स्थानाभावके कारण यहाँ सबका दिग्दर्शन कराना संभव नहीं है।

१२. समाज किस ओर जा रहा है

इस पुस्तकमें २८ लेख हैं। श्रीपोद्दारजी एक ओर घंटों भाव-समाधिमें लीन रहते थे—दूसरी ओर समाजके गिरते हुए स्तरको देखकर उनके हृदयमें वेदना होती थी। इसी कारण समय-समयपर उनकी लेखनी 'पतनमें उत्थानका भ्रम', 'पतनोन्मुख जगत्', 'हमारी प्रगतिका नग्न स्वरूप', 'समाज किस ओर जा रहा है', 'आज मानव क्या कर रहा है', 'परमार्थके नामपर पाप', 'समाजमें धर्मके नामपर पाप', 'पतनोन्मुख मानव समाजकी रक्षा कैसे हो ?', 'कैसा साहित्य चाहिये' आदि विषयोंपर चलती रहती थी।

'समाज किस ओर जा रहा है' शीर्षक लेखमें वे लिखते हैं—

"आज समाजमें आसुरीभाव बढ़ रहा है, इसीलिये सत्य, ईमानदारी, संयम और सदाचार तथा त्यागका तिरस्कार हो रहा है और असत्य बेईमानी, असंयम, यथेच्छाचार तथा अधिकारका आदर तथा गौरवके साथ ग्रहण किया जा रहा है और इसीको आदर्श मानकर लोग बड़े चावसे आँखे मूँदकर इसी ओर दौड़े चले जा रहे हैं।

आज सभी जानते हैं कि हमारे यहाँ बड़े-से-बड़े व्यापारी भी ऐसे कोई बिरले ही हैं, जो सच्चे तथा ईमानदार हों तथा जो व्यापारमें चोरी, बेईमानी न करते हों। सरकारी अधिकारियोंमेंसे सच्चे इमानदार आदमी बहुत थोड़े ही है।

सिनेमाकी नर्तकियोंका प्रायः सर्वत्र सम्मान होता है। हमारे राष्ट्रपति तथा देशके प्रधानमन्त्री तकसे वे अबाध मिल सकती हैं, उनके साथ उनके छायाचित्र उतरते हैं और उनके छायाचित्रोंको समाचार-पत्रोंके मुख्यपृष्ठोंपर छापा जाता है।"

"कैसा साहित्य चाहिये ?" शीर्षक लेखमें वे लिखते हैं—

"साहित्यमें भाव-प्रेरणाके साथ-साथ विवेकपूर्ण प्रेरणा भी परमावश्यक है, जिससे भावकी उछालमें कोई ऐसा काम न बन जाय जो न करने योग्य हो। एक प्रकारका संयम बना रहे; तथा प्रयोजनके अनुसार भावकी सरिता भी सदाके लिये बहती रहे। काल-विशेषकी आवश्यकताका सामयिक उत्तेजनामय भाव स्वभाव-रूपमें परिणत नहीं हो जाना चाहिये।"

श्रीपोद्दारजीके पत्र-सग्रहोंका परिचय

श्रीपोद्दारजीके जीवनकालमें ही उनकी अभूतपूर्व ख्याति एवं लोकप्रियता हो गयी थी। जनताके मानसपटलपर उनके मधुर व्यक्तित्वका इतना अधिकार हो गया था कि लोग उन्हें अपना अत्यन्त निकटका स्नेही स्वजन मानते थे। इसके फलस्वरूप वे अपने मनकी गुप्त-से-गुप्त बात भी उन्हें लिखनेमें संकोचका अनुभव नहीं करते थे। इसका परिणाम यह हुआ कि श्रद्धालुओं, साधकों, आत्मीयजनोंके हजारों पत्र प्रति माह उनके पास आने लगे। कोई अपनी साधनाकी गुत्थियों एवं बाधाओंके सम्बन्धमें लिखता, कोई कर्मकाण्डके विषयमें जानकारी करना चाहता, कोई सत्संग-भजनके सम्बन्धमें पथ-निर्देश चाहता, कोई परमार्थकी पगडंडियोंके बारेमें जिज्ञासा करता, कोई व्यक्तिगत पारिवारिक समस्यापर राय माँगता, कोई समाज सुधारके विषयमें परामर्श चाहता, कोई शास्त्रोंके सम्बन्धमें शंकाओंके समाधानकी प्रार्थना करता, कोई राजनीतिक विषयमें, कोई वर्तमानमें देशकी स्थितिपर प्रकाश डालनेकी इच्छा व्यक्त करता, कोई विधवा-विवाह, बाल-विवाह आदिके विषयमें, कोई अपनी व्यापारिक समस्याओंके सम्बन्धमें, कोई भाई-भाई झगड़ेको सुलझानेके लिये, कोई अपने दाम्पत्य जीवनकी गुप्त बातोंके सम्बन्धमें राय करता तो कोई अपने अवैध प्रेमके विषयमें उनका मत जानना चाहता। इनके अतिरिक्त 'कल्याण'के सम्पादकके नाते आनेवाले पत्रोंकी संख्या बहुत बड़ी थी। पत्रोंका उत्तर देनेकी उनकी शैली अद्भुत थी। सार्वजनिक उपयोगी पत्रोंके उत्तर वे 'कल्याण'में पत्र देनेवालेका नाम हटाकर 'लोक-परलोकका सुधार' शीर्षकके अन्तर्गत प्रकाशित कर देते थे। सब पत्रोंको वे

स्वयं खोलते तथा पढ़कर अलग-अलग वर्गोंके लिफाफोंमें रख लेते। उत्तर देते समय फिर पत्र पढ़ते।

बहुत वर्षोंतक तो वे सभी पत्रोंके उत्तर अपने हाथसे लिखते फिर जब पत्रोंकी संख्यामें बहुत वृद्धि हो गयी तब कुछ पत्रोंके उत्तर टाइप कराके, कुछ स्वयं हाथसे लिखकर भेजते। व्यक्तिगत बातोंके उत्तरमें यह विशेष ध्यान रखते कि दूसरा व्यक्ति उस उत्तरको पढ़कर भी पूरी बात नहीं समझ सकता। पिछले वर्षोंमें कई पत्रोंके उत्तर पद्यमें देने लगे। उनका उत्तर चाहे गद्यमें हो या पद्यमें इतना हृदयस्पर्शी होता था कि पानेवालेका हृदय गद्‌गद् हो जाता और वह अपने भाग्यकी सराहना करने लगता। श्रीपोद्दारजीके लिये यह भी एक भगवत्सेवाका ही रूप था। उनके उत्तरोंसे कितनोंकी विभिन्न समस्याओंका हल हुआ, कितनोंका मार्ग दर्शन हुआ, कितनोंका कलह शान्त हुआ, कितने अध्यात्म-साधनामें आगे बढ़े इसका अनुमान लगाना संभव नहीं है। जीवनके अन्तिम वर्षोंमें जब वे भाव-समाधिमें निमग्न रहने लगे तब कई बार 'कल्याण'के माध्यमसे उन्होंने सूचना दी कि लोग पत्र न दें क्योंकि उत्तर न दिया जानेसे उन्हें दुःख होगा। कई बार प्रार्थना करनेके पश्चात् भी पत्रोंकी संख्यामें विशेष कमी नहीं हुई।

खेदका विषय है कि उनके हजारों-हजारों पत्रोंमेंसे अभीतक केवल मात्र ७४४ पत्र पुस्तक रूपमें प्रकाशित हो सके हैं जो 'कल्याण'में प्रकाशित हुए थे। इनका विवरण निम्नलिखित है—

१–	लोक-परलोकका सुधार भाग १	पत्र संख्या	६८
२–	,, ,, ,, ,, २	,, ,,	६५
३–	,, ,, ,, ,, ३	,, ,,	६३
४–	,, ,, ,, ,, ४	,, ,,	६४
५–	,, ,, ,, ,, ५	,, ,,	६६
६–	व्यवहार और परमार्थ	,, ,,	१०५
७–	सुख-शान्तिका मार्ग	,, ,,	११६
८–	शान्तिकी सरिता	,, ,,	५६
९–	सुखी बनो	,, ,,	५१
		कुल संख्या	७४४

पत्रोंको प्रायः लोग अपनी व्यक्तिगत वस्तु मानते हैं। अतः प्रकाशित करनेसे हिचकते हैं। इतनेपर भी जितने पत्र प्रकाशित हुए हैं उनसे प्रायः सभीके प्रश्नों एवं समस्याओंका समाधान प्राप्त हो सकता है।

जिस तरह भगवच्चर्चा नामसे प्रकाशित सभी पुस्तकें भिन्न-भिन्न लेखोंके संग्रह होनेसे हर एक पुस्तक स्वतन्त्र है उसी तरह लोक-परलोकका सुधार नामसे पाँच भागोंमें श्रीपोद्दारजीके पत्र प्रकाशित हुए हैं। एक ही नामसे पाँच भाग होनेपर भी हर पुस्तकमें भिन्न-भिन्न पत्र हैं तथा सभी पुस्तकें अपनेमें पूर्ण तथा स्वतन्त्र हैं। उनके पत्रोंके कुछ अंश नीचे दिये जा रहे हैं जिनसे उनकी भाषा, शैली तथा वस्तु गुणका परिचय प्राप्त हो सके—

१. घर छोड़नेकी आवश्यकता नहीं

आपकी भावुकता सराहनीय है परन्तु प्रत्येक काम बहुत विचारके बाद करना चाहिये। आपकी अभी बाईस सालकी उम्र है। घरमें जवान पत्नी और छोटा बचा है—जो आपके ही आश्रित हैं। घरमें और लोग भी हैं। ऐसी हालतमें घबराकर घरसे निकल जाना कहाँतक उचित है, इसपर आपको गम्भीरतासे विचार करना चाहिये। सच्चा एकान्त तो मनके निर्विषय होकर भगवत्परायण होनेमें है। मुँहसे भगवान्‌का नाम लेते और मनको भगवान्‌में लगाते आपको कोई रोक नहीं सकता।

अतएव मेरी नम्र सम्मति तो यही है और बड़े बलके साथ दृढ़तापूर्वक मैं यह कहता हूँ कि आप इस अवस्थामें घर छोड़नेका विचार बिल्कुल त्याग दें और अपने स्वभावको सहिष्णु बनाकर माता-पिताकी और घरकी भगवद्भावसे सेवा करें।

(लोक-परलोकका सुधार भाग १)

२. धनका सदुपयोग

आपके पत्रको मैंने ध्यानसे पढ़ा। उसमें कुछ झुँझलाहट-सी प्रतीत होती है। अभावग्रस्त लोग आपको सहायताके लिये तंग

करते हैं, इससे आपको ऊबना और झुँझलाना क्यों चाहिये ? प्यासे प्राणी पानीके लिये जलाशयके पास ही तो जाते हैं। सब प्राणी आपके पास आते ही कहाँ हैं ?

असली बात तो यह है कि भगवान्ने आपको जो कुछ दिया है, वह आपका नहीं है, भगवान्का है। आप उसके स्वामी नहीं हैं, आप तो उसकी रक्षा, व्यवस्था और भगवदाज्ञानुसार भगवदर्थ खर्च करनेवाले सेवकमात्र हैं। इस धनको बड़ी दक्षताके साथ भगवान्की सेवामें लगाना चाहिये। आपके द्वारा जिनकी सेवा हो, उनपर कभी अहसान नहीं जताना चाहिये।

(लोक-परलोकका सुधार भाग १)

३. स्वतन्त्र विवाह

आपका कृपापत्र मिला। आपने कालेजमें शिक्षा प्राप्त करनेवाली एक सत्रह वर्षकी क्षत्रियकन्या और उन्नीस वर्षके ब्राह्मण-युवकमें प्रेम होने, उनके परस्पर विवाह करनेकी दृढ़ प्रतिज्ञा करने और कन्याके अभिभावकों द्वारा इसके विरुद्ध मत प्रकट किये जानेकी बात लिखकर मेरी सम्मति पूछी, इसके लिये धन्यवाद। सच बात तो यह है कि इस प्रकारकी चीज वस्तुतः प्रेम है ही नहीं; यह मोहका आकर्षण है, जो हमारे आजकलके कालेजोंकी शिक्षा और संसर्गका कटु फल है। यह आर्यनीति नहीं है, एक प्रकारका यथेच्छाचार है, जो सर्वथा त्याज्य है।

सच्ची बात तो यह है कि जवान लड़कियोंको कालेजोंमें पढ़ाना तथा लड़कोंके साथ अबाध मिलने-जुलने देना ही इस प्रकारकी बुराइयोंकी जड़ है। माता-पिता पीछे पछताते हैं (और ऐसे युवक-युवतियोंको भी मनमानी करनेपर भविष्यमें बहुत पछताना पड़ता है—इसके प्रमाण मेरे पास हैं)। फल तो बीजके अनुसार ही होगा।

(व्यवहार और परमार्थ)

४. पत्निका धर्म

आपने जो कुछ लिखा, उसका उत्तर यह है कि पत्नीके लिये

पतिव्रतधर्म जैसे पालनीय है, वैसे ही पतिको भी एक पत्नी-व्रत अवश्य आचरणीय है। स्त्रीको पुरुषका धर्म न देखकर अपने धर्म-का अवश्य पालन करना चाहिये. इसीमें उसका महत्व है। परंतु पुरुषोंको भी केवल परोपदेश करनेमें पण्डित न रहकर स्वयं धर्म-का आचरण करना चाहिये।

आपकी सुलक्षणा धर्मपत्नी बड़े नियमसे रहती हैं, आपकी सब प्रकारसे सेवा करती हैं पर कभी-कभी नम्रताके साथ आपको जीवनमें सदाचारकी रक्षाके लिये समझाती हैं; सो यह तो आपका सौभाग्य है, जो आपको ऐसी पत्नी मिली हैं। उनकी बातको बुरा न मानकर आदर करना तथा तदनुसार आचरण करना चाहिये। पुरुषके लिये पत्नीके समान मित्र और कोई नहीं है।

(सुखी बनो)

स्थानाभावके कारण गम्भीर पत्रोंके अंश नहीं दिये जा रहे हैं।

श्रीपोद्दारजीके अन्य साहित्यका परिचय

काव्य, निबन्ध एवं पत्रोंके अतिरिक्त अन्य साहित्यमें सबसे महत्वपूर्ण हैं श्रीपोद्दारजीके सम्पादकीय लेख जो वे 'कल्याण' शीर्षकसे प्रति मास 'कल्याण'में प्रकाशित करते थे। इनके अन्तमें वे अपने नामके स्थानपर "शिव" उपनाम देते थे। इसका कारण शायद यही हो कि आदेश-उपदेशके रूपमें लिखी हुई वस्तुको वे अपने नामसे प्रकाशित करनेमें संकोचका अनुभव करते होंगे। एक दृष्टिसे इन सम्पादकीय लेखोंका सर्वाधिक महत्व है। ये लेख वे नियमित प्रति मास 'कल्याण'के पाठक-पाठिकाओंके उद्बोधनके हेतु लिखते थे। अपने जीवनके अन्तिम वर्षोंमें जब वे अधिकांश समय भाव-समाधिमें रहने लग गये थे उस समयमें भी ये लेख वे प्रति मास अवश्य लिखते थे। अपनी दीर्घकालीन साधना, तपस्या, चिन्तन, अध्ययन एवं अनुभूतियोंपर आधारित ये लेख न जाने कितने-कितने लोगोंके जीवनमें परिवर्तन करने, उन्हें सत्पथ दिखाने, आशा-उत्साहका संचार करने आदिमें हेतु बने हैं इसका

अनुमान लगाना कठिन है। बादमें इन्हीं लेखोंपर शीर्षक बैठाकर पुस्तक रूपसे 'कल्याण-कुंज' नामसे प्रकाशित किया गया। अपने जीवन कालमें इन पुस्तकोंपर भी उन्होंने अपने नामके स्थानपर "शिव" उपनाम ही दिया। इनके निवेदनमें वे लिखते हैं—

"मन तरङ्गोंका समुद्र है। 'शिव'के मनमें भी अनेक तरङ्गे उठती हैं उन्होंमेंसे कुछ तरङ्गे लिपिबद्ध भी हो जाती हैं और उन्हीं अक्षराकारमें परिणत तरङ्गोंका यह संग्रह प्रकाशित हो रहा है। इस संग्रहमें पुनरुक्ति और क्रमभङ्ग-दोष दिखायी देंगे, तरङ्गे ही जो ठहरीं। यह सत्य है कि तरङ्गोंके पीछे भी एक नियम काम करता है और वहाँ भी एक नियमित ही क्रमधारा ही चलती है, परंतु उसे हम अपनी इन आँखोंसे देख नहीं पाते। सम्भव है, सूक्ष्म दृष्टिसे देखनेवाले पुरुषोंको इस तरङ्ग-संग्रहमें भी किसी नियमका रूप दिखलायी दे। ये विचार-तरङ्गे भी बार-बार आवृत्ति करके मनन करने योग्य हैं। असलमें उन्हीं विचारोंका बार-बार आवृत्ति करके उन्हें सुपुष्ट, सुदृढ़ करके स्वभावमें परिणत करना है, जिनकी जीवननिर्माण तथा जीवनकी परम एवं चरम सफलताके लिये अनिवार्य आवश्यकता है।"

ये सम्पादकीय लेख सात पुस्तकोंमें प्रकाशित हुए हैं। जिनका विवरण निम्नलिखित है—

पुस्तकका नाम	सम्पादकीय लेखोंकी संख्या
१. कल्याण-कुंज भाग १	२७
२. ,, ,, ,, २	४६
३. ,, ,, ,, ३	६३
४. मानव कल्याणके साधन	८८
५. दिव्य सुखकी सरिता	३८
६. सफलताके शिखरकी सीढ़ियाँ	४६
७. परमार्थकी मन्दाकिनी	४४
	कुल संख्या ३५५

जिस तरह भगवच्चर्चा एवं लोक-परलोकका सुधार नामके विभिन्न भाग स्वतन्त्र पुस्तकें हैं—एक भाग दूसरेके बिना अधूरा नहीं है उसी तरह 'कल्याण-कुंज'के भाग भी सभी स्वतन्त्र पुस्तकें हैं। इनकी भाषा, शैली एवं प्रतिपाद्य विषयके परिचय हेतु कुछ अंश नीचे दिये जा रहे हैं—

"कभी निराश मत हो। यह निश्चय रक्खो, तुम्हारी आत्म-शक्ति भी उतनी ही है, जितनी संसारके बहुत बड़े-बड़े महापुरुषों-में थी। निश्चय, विश्वास और साधनसे आत्मशक्तिका विकास करो। यदि तुम्हारा निश्चय दृढ़ हो, विश्वास अटल हो और साधन नियमित और नित्य हो तो इसी जन्ममें तुम ऊँचे-से-ऊँचे ध्येयको प्राप्त कर सकते हो। अपनी शक्ति हीनताको देखकर उत्साह न छोड़ो।"

"याद रक्खो—जगत् क्षणभंगुर है, हम सब मौतके मुँहमें बैठे हैं, पता नहीं काल देवता कब किसीको अपने दाँतों तले दबा-कर पीस डालें। अतएव निरन्तर सावधान रहो, किसीको दुःख न पहुँचाओ, सबके सुखके कारण बनो, सबका मङ्गल चाहो, सबका हित करो, भगवान्में प्रेम करो और शुद्ध व्यवहारसे अपने स्वामी भगवान्के प्रति लोगोंमें श्रद्धा-भक्ति उत्पन्न करनेका प्रयत्न करो।"

(कल्याण-कुंज भाग २)

"किसीकी निन्दा न करो, किसीके दोष न देखो, न किसीमें दोषका आरोप करो। याद रक्खो जगत्में गुण-दोष होते ही हैं। तुम दोष ही ढूढ़ने और देखने लगोगे तो तुम्हें दोषी मिलेंगे। तुम अपने मनमें जैसा कुछ सोचते-विचारते हो वैसा ही तुम्हें फल प्राप्त होता है।"

"यह आशा मत करो कि सब तुम्हारी ही बात मानें, तुम्हारे ही मतका समर्थन करें, तुम्हारे ही आज्ञाकारी बनें और तुम्हारे प्रत्येक कार्यकी प्रशंसा ही करें। जब तुम दूसरोंके लिये ऐसा नहीं कर सकते, तब दूसरोंसे ऐसी आशा क्यों कर सकते हो? करोगे

तो निराशा, दुःख, अपमानबोध और विषादके सिवा और कुछ भी हाथ न लगेगा।"

(कल्याण-कुंज भाग ३)

"याद रक्खो—तुम दूसरोंको जो कुछ दोगे, वही तुम्हें मिलेगा और मिलेगा अनन्तगुना होकर घृणा, द्वेष, वैर, द्रोह, ईर्ष्या, बुराई अथवा प्रेम, सद्भाव, मैत्री, सहानुभूति, आत्मीयता, भलाई—इनमें-से कुछ भी देकर देख लो।"

"याद रक्खो—यदि तुम प्रेम करोगे—प्रचुर प्रेम करोगे—तो बुराईकी, द्वेषकी आगमें पानीकी वर्षा कर दोगे। बुराईकी आग बुझ जायेगी। तुम्हारे पास बिखरी हुई-बढ़ी हुई पवित्र प्रेमकी सरिता आयेगी जो तुम्हारे जीवनको निर्भय, सुखी और शान्त बना देगी।"

(मानव-कल्याणके साधन)

मुद्रणाधीन पुस्तकें

वर्तमानमें श्रीपोद्दारजीकी दो पुस्तकें मुद्रणाधीन हैं—(१) श्रीगीता-चिन्तन (२) श्रीभगवन्नाम-चिन्तन।

श्रीगीता-चिन्तनमें श्रीपोद्दारजीद्वारा लिखित गीताकी संक्षिप्त टीका तथा गीता विषयक लिखी हुई सम्पूर्ण सामग्रीका सन्निवेश है। यह पुस्तक गीता-प्रेमियोंके लिये विशेष रूपसे रुचिकर एवं उपादेय होगी। श्रीपोद्दारजीकी मान्यताके अनुसार गीताका प्रधान प्रतिपाद्य विषय तथा गीताका पर्यवसान 'साकार भगवान्‌की शरणागति'में है और गीताका 'समग्र ब्रह्म' या 'पुरुषोत्तम' श्रीकृष्ण ही हैं। इस पुस्तकमें भक्तियोगपर प्रचुर सामग्री होनेके साथ ही कर्मयोग तथा ज्ञानयोगपर भी महत्त्वपूर्ण सामग्री है। इनके साथ ही 'गीताके अर्थके लिये आग्रह मत करो', 'गीताके विभिन्न अर्थोंकी सार्थकता', 'गीता और वैराग्य', 'योगका अर्थ' आदि-अनेक विषयोंका भी सुन्दर विश्लेषण किया गया है।

'श्रीभगवन्नाम-चिन्तन'में श्रीपोद्दारजीद्वारा लिखित भगवन्नाम महिमा सम्बन्धी सामग्री संग्रहीत है नाम-प्रेमियोंके लिये इस पुस्तककी उपादेयता अपरिसीम है। नाममें रुचि कैसे हो, बिना भावका नाम जप भी कैसे कल्याणकारी है, हमारे धर्म-शास्त्रोंमें नाम महिमाके श्लोक, भगवन्नाम सर्वोपरि तीर्थ, नाम जप करनेकी विधि, नामापराध, विभिन्न नामोंकी महिमा, भगवन्नाम-कीर्तन और स्मरण, मन्त्र और नाम जप, भगवन्नामसे सब संभव, नाम जपसे रोगनाश, पाप नाश आदि-आदि विषयोंका बड़ा ही हृदय-स्पर्शी, मार्मिक विवेचन किया गया है।

हिन्दी-साहित्यके इतिहासमें 'पोद्दार-युग'

श्रीपोद्दारजीका साहित्य इतना विशाल एवं बहुमुखी है कि इस लघु प्रयासके माध्यमसे उसका पूरा परिचय देना संभव नहीं है। अतः केवल सांकेतिक परिचय देनेका ही प्रयास किया गया है। जब कभी हिन्दी साहित्यके विद्वानों, प्राध्यापकों एवं शोध-कर्ताओंका ध्यान श्रीपोद्दारजीके साहित्यकी ओर आकृष्ट होगा तभी उनके महत्वका कुछ आकलन संभव हो सकेगा। यद्यपि अभीतक श्रीपोद्दारजीका पूरा साहित्य प्रकाशित नहीं हो पाया है, किंतु जितना प्रकाशित हुआ है वह भी अतुलनीय एवं अद्वितीय है। यह कहना कोई अत्युक्ति नहीं है कि इस युगको हिन्दी साहित्यके इतिहासमें 'पोद्दार-युग' कहना अधिक समीचीन होगा क्योंकि इन लगभग ५० वर्षोंमें हिन्दी-साहित्यकी जितनी अभिवृद्धि श्रीपोद्दारजी-ने की उतनी किसी अकेले व्यक्तिने नहीं की। शायद हमारी भावी पीढ़ियोंको यह विश्वास करनेमें भी कठिनता हो कि 'कल्याण'के विशेषाङ्कोंका सम्पादक और इतने विशाल साहित्यका निर्माता एक ही व्यक्ति था।

साहित्यकारों एवं विद्वानोंकी दृष्टिमें श्रीपोद्दारजी

पोद्दारजीने अकेले चुपचाप जितना किया है, उसे देखकर आश्चर्य होता है। उन्होंने सर्वोत्तम साहित्यको सरल-ललित भाषामें

और वह भी यथासम्भव अवितथ और शुद्ध रूपमें लिखकर, लिखाकर प्रकाशित कराया। हिन्दी भाषा इन ग्रन्थ-रत्नोंसे बहुत समृद्ध हुई और उसके पाठकोंका मन पवित्र हुआ है, विचार उद्‌बुद्ध हुआ है और ज्ञान-परिसर विस्तीर्ण हुआ है।

पोद्दारजी अब मर्त्यकायामें नहीं है। परंतु उन्होंने उत्तम साहित्य और उत्तम विचारोंके प्रेमीमात्रके हृदयमें सदा-सर्वदाके लिये अपने आपको प्रतिष्ठित कर दिया है। वे सही अर्थोंमें अमर हो गये हैं।

—आचार्य श्रीहजारीप्रसादजी द्विवेदी

'श्रीराधा-माधव-चिन्तन'के कुछ अंश पढ़े। श्रीपोद्दारजीकी साहित्य-सेवापर हम सबको गर्व है। इस पुस्तकका धार्मिक मूल्य तो है ही, साहित्यिक मूल्य भी उल्लेखनीय है।

—आचार्य श्रीगुलाबरायजी

भाई श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दारके लिये मेरे हृदयमें सदा विशेष सम्मान रहा है और यह इससे समझा जा सकता है कि सन् १९४३ में प्रकाशित मेरा ग्रन्थ 'ब्रज भाषाका व्याकरण' उन्हीं-को समर्पित हुआ है। महर्षि मालवीय, राजर्षि टण्डन तथा पोद्दारजीको ही मैंने ग्रन्थ समर्पित किये हैं। इसीसे समझिये कि उन्हें मैं किस कोटिमें रखता था।

—आचार्य श्रीकिशोरीदासजी वाजपेयी

भारतीय संस्कृतिके पुनरुत्थानमें श्रीपोद्दारजीका बहुत बड़ा हाथ रहा है। 'कल्याण'के सम्पादन द्वारा उन्होंने भारतीय धर्म, दर्शन, संस्कृति तथा तत्सम्बन्धी शास्त्र-ग्रन्थों, पुराणों आदिमें जो कुछ सनातन मूल्यवान् श्रेष्ठ तथा वरेण्य था—उसका सहस्त्रों नर-नारियोंमें प्रचार-प्रसार कर उन्हें नवीन आस्था, स्फूर्ति तथा

भारतीय जीवन-आदर्शोंके प्रति श्रद्धा एवं निष्ठा प्रदान की। गीता-प्रेसके समस्त प्रकाशन जिस दिव्य आलोकसे सदैव मण्डित रहे हैं, वह श्रीपोद्दारजीकी सूझ बूझ तथा अथक परिक्षण-निरिक्षणका परिणाम था।

—श्रीसुमित्रानन्दन पन्त

'श्रीराधा-माधव-चिन्तन' जैसी रचना श्रीहनुमानप्रसादजी जैसे भक्त और चिन्तकसे ही सम्भव है। उन्होंने भक्त जनोंका अमित उपकार किया है।

—राष्ट्रकवि श्रीमैथलीशरण गुप्त

श्रीपोद्दारजीकी विशेषता यह थी कि वे प्राचीन भारतके ज्ञानको प्राचीन (संस्कृत) अथवा आधुनिक भारतकी भाषा (हिंदी) में फैलाते थे। श्रीपोद्दारजीने भारतकी सारी परम्पराको हिंदीमें लाकर इस विशाल जन-समूहके लिये सुलभ कर दिया। जिन प्राचीन पुराणों और ग्रन्थोंका जनता पहले केवल नामभर सुना करती थी, वे ग्रन्थ अब उसके हाथमें है और वे हिंदीमें हैं, जिस भाषापर जनताका स्वाभाविक अधिकार है। यह एक ऐसी सेवा है, जिसका मूल्य आसानीसे आँका नहीं जा सकता। वे भारतीय परम्पराके उद्धारक अवतार थे।

—श्रीरामधारी सिंह 'दिनकर'

मैंने (श्रीराधा-माधव-चिन्तन) पुस्तकको आदिसे अन्ततक पढ़ा और उससे बहुत लाभान्वित हुआ। पुस्तक भाईजीके व्यापक अध्ययन, गम्भीर चिन्तन और गहन रसानुभूतिका परिणाम है। इस महान कृतिसे बहुत लोगोंका पथ-प्रदर्शन होगा।

—डा० हरिवंशराय वच्चन

गीताप्रेसके द्वारा श्रीपोद्दारजीने बड़े महत्वका काम किया—प्राचीन ग्रन्थोंको शुद्ध रूपमें और सुलभ मूल्यमें प्रकाशित-प्रसारित

करके। 'कल्याण'का सम्पादन करते-करते वे स्वयं 'कल्याण मूर्ति' बन गये थे।

—श्रीवियोगी हरि

श्रीपोद्दारजीके कार्यसे, विशेषतया प्राचीन हिंदू धार्मिक साहित्य अनवरत प्रकाशनसे कौन नहीं परिचित है? पोद्दारजीकी प्रबन्ध-कुशलताके फलस्वरूप 'गीताप्रेस'से लाखोंकी संख्यामें प्रकाशित और वितरित धार्मिक साहित्यने हिंदू-संस्कृतिका संदेश घर-घर पहुँचाया।

—श्रीधीरेन्द्र वर्मा

इस ('पद-रत्नाकर' जैसे) अनुपम रसानुभूतिके ग्रन्थको बार-बार पढ़कर संत सूरदासकी काव्य मन्दाकिनीमें अवगाहनका आनन्द प्राप्त होता है। भाईजी कितने बड़े भक्त कवि थे, यह 'पद-रत्नाकर'को पढ़कर आज ही ज्ञात हो सका।

—डा० रामकुमार वर्मा

'कल्याण'के विशेषाङ्क तो वास्तवमें तत्तत् विषयोंके विश्वकोप ही हैं, जिनका कलेवर भारतके मान्य विद्वानों तथा विपश्चितोंसे सुचिन्तित लेख लिखवाकर सुसज्जित किया जाता है। इस प्रकार अकेले 'कल्याण'के इन महनोय विशेषाङ्कोंका सम्पादन ही धार्मिक तथा साहित्यिक संसारमें श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारका नाम अमर बनानेके लिये पर्याप्त है।

—डा० बलदेव उपाध्याय

श्रीभाई हनुमानप्रसादजी पोद्दारकी समर्थ लेखनीसे जो ग्रन्थरत्न निःसृत हैं, उनसे न केवल हिंदीका साहित्य-भण्डार समृद्ध हुआ है, किंतु मधुर रसके उपासकोंको मनोवाञ्छित प्रसाद बड़ी स्पृहणीय मात्रामें मिल गया है। जो साहित्यिक आनन्दके

लिये 'प्रसन्नगम्भीरपदा सरस्वती'के प्रवाहमें प्रवाहन करना चाहते हैं, उन्हें यह ग्रन्थ (श्रीराधा-माधव-चिन्तन) अवश्य देखना चाहिये।

श्रीपोद्दारजीने राष्ट्र-भारती हिंदी और सनातन भारतीय संस्कृतिके प्रचार-प्रसारके लिये आश्चर्यजनक कार्य किया है। पत्रकारितामें उनकी सफलता अद्वितीय रही है।

—डा० बलदेव प्रसाद मिश्र

श्रीभाईजीकी रसवती लेखनीसे निःसृत श्रीराधा-माधव सम्बन्धी इस साहित्य-सरितामें अवगाहनकर अतीव आनन्द प्राप्त हुआ। इन रचनाओंमें इस विषयका जैसा मर्मस्पर्शी कथन हुआ है, उससे व्रजके बड़े-से-बड़े विद्वान्‌को भी अब नूतन प्रकाश मिलेगा।

उनकी साधना काव्य-क्षेत्रमें भी इतनी प्रशस्त थी, इसका ज्ञान अधिक व्यक्तियोंको नहीं है। मैंने श्रद्धेय भाईजीकी कुछ काव्य-कृतियोंका पहले रसास्वादन किया था, किंतु उन्होंने इतने विपुल परिणाममें काव्य-रचना की थी, इसका परिज्ञान मुझे इस 'पद-रत्नाकर' ग्रन्थसे ही हुआ है। इनका गायन एवं वाचन दिव्य वातावरणकी अवतारणा करनेमें समर्थ है।

डा० प्रभुदयाल मीतल

मैं यह कल्पना नहीं कर सकता था कि भाइजी तीन भाषाओं-पर समान अधिकार रखते हुए इतना उच्च भाव-पूर्ण साहित्य सृजन कर सकते थे। यह 'पद-रत्नाकर' एक श्रेष्ठ भक्त कविकी पूर्ण संवेदनशील अभिव्यक्तिकी द्योतक रचना है। मैंने हिन्दी साहित्य-के भक्तिकालीन कवियोंकी रचनाएँ पढ़ी हैं, उनका विवेचन-विश्लेषण भी किया है, कुछ अनुसंधान भी किया है। मैं अल्प ज्ञानके आधारपर कह सकता हूँ कि भाईजीका यह पद-साहित्य इस श्रेणीके कवियोंसे किसी भाँति कम नहीं है। वरन् इसकी

विशेषता तो भाषा-भावका एकत्र समाहार है। खड़ी बोलीमें इतना सरस, भाव-पूर्ण भक्ति-साहित्य मेरे देखनेमें नहीं आया।

—डा० विजयेन्द्र स्नातक

उनके (श्रीपोद्दारजीके) पदोंका ऐसा विशाल संग्रह हो सकता है, इसकी मैंने कल्पना भी नहीं की थी। 'कल्याण'के सम्पादन और अनेक पुस्तक-पुस्तिकाओंके लेखनमें निरवधि संलग्न रहते हुए भी वे इतने सारे व्यवहार और परमार्थके आदर्श-सूचक, तत्त्व-कथा-पूर्ण और भक्ति-भाव-प्रेरक बहुमूल्य पदोंकी रचना कर सके, इससे जान पड़ता है कि उनका जीवन कितना समर्पित, कितना सरस और संगीतमय था। लगता है कि जैसे उनके श्वास-प्रश्वासमें उनके भक्ति-रस रंजित हृदयसे पदोंका स्वतः स्फुरण होता था। इन्हें 'तुकबंदियाँ' न कहकर 'महावाणी' कहना अधिक उपयुक्त होगा।

—डा० अवध विहारीलाल कपूर

भारतके नैतिक उत्थानकी दिशामें अनेकों पुस्तकें लिखी गयी हैं और लिखी जायेंगी किन्तु 'पद-रत्नाकर' जैसी मौलिक, स्थायी महत्वकी काव्यकृति किसी भी देश और कालमें बहुत कम प्रकाशित हुई हैं। इस पुस्तकके प्रणेता कोई साधारण कवि नहीं, वरन् ऐसे काव्यस्रष्टा और युगद्रष्टा हैं जिन्होंने अपनी रचनाओंसे भक्ति-साहित्यके एक युगका निर्माण किया है। 'पद-रत्नाकर' भक्ति-काव्यके क्षेत्रमें अभिनन्दनीय प्रयास है। × × × ×

'श्रीराधा-माधव-चिन्तन' एक नये विषयपर अत्यन्त विस्तृत अध्ययनपूर्ण ग्रन्थ है। विषयचयन सर्वथा नया और उसका विश्लेषण मनोवैज्ञानिक एवं व्याख्या साङ्गोपाङ्ग है। पोद्दारजीकी यह पुस्तक बड़े परिश्रमसे लिखी गयी है। लेखकका अध्ययन और मनन सर्वत्र झलकता है।

—डा० रामचरण महेन्द्र

यह ग्रन्थ काव्य और संगीत दोनों ही कलाओंकी एक ललित, मधुर उपलब्धि है और इसका 'पद-रत्नाकर' नाम सर्वथा सार्थक है। 'सूर-सागर'के पश्चात् 'पद-रत्नाकर' हिन्दीकी दूसरी अमूल्य गीति-निधि है। 'सूर-सागर' कृष्णाश्रयी है, 'पद-रत्नाकर' राधा-माधव उभयाश्रयी। यह ब्रजभाषा और खड़ी बोली दोनोंका गौरव - ग्रन्थ है।

भाईजीने राधा-कृष्णके दिव्य-प्रेमको पूर्णतया मर्यादानिष्ठ मधुर-रूपमें चित्रित किया है। सीताराम-प्रेमको जिस महिमा-मंडित आदर्श-रूपमें गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीने प्रस्तुत किया था, वैसे ही भाईजीने राधा-कृष्ण-प्रेमको सम्पूर्ण गरिमाके साथ अंकित किया है। 'पद-रत्नाकर' भगवद् भक्तोंका ही नहीं, सम्पूर्ण हिन्दी-प्रेमियोंका गल-हार बनेगा—यह निश्चित ही है।

—डा० सियाराम सक्सेना 'प्रवर'

ब्रजभाषा और खड़ी बोलीके उनके सैकड़ों पद हैं, जो उनके अन्तर्मार्दवसे ओत-प्रोत और उल्लसित हैं। कविकी दृष्टिसे भी श्रीभाईजीका अपना एक विशिष्ट स्थान है। सम्पादनमें शायद ही दो-एक नाम उसके साथ रखे जा सकें। लेखकके रूपमें कठिन विषयको सुबोध शैलीमें समेट लेनेके तो वे आचार्य ही थे। देश-भक्तिमें वे बहुत आगे थे और राष्ट्रीय जागरणका प्रत्येक युग उनके सक्रिय सहयोग और पथ-दर्शनसे ऊर्जस्वित हुआ है। ऐसे व्यक्तिके विषयमें, जिसका अधिकांश अतल सागर-गर्भमें बहते हुए 'आइस-वर्ग'की भाँति संसारकी दृष्टिसे ओझल है, लेखनी क्या लिखेगी? वाणी क्या प्रकट करेगी?

—श्रीरामनाथ 'सुमन'

श्रीपोद्दारजी लिखित छोटी-छोटी पुस्तकोंके अमृत-बिन्दु

मनको वशमें करनेके कुछ उपाय—

मनको वश करनेमें नियमानुवर्तितासे बड़ी सहायता मिलती है। सारे काम ठीक समय नियमानुसार होने चाहिये। परमार्थमें भी इससे बड़ा लाभ होता है।

मनके प्रत्येक कार्यपर विचार करना चाहिये।

मनके कहनेमें नहीं चलना चाहिये, जब तक यह मन वशमें नहीं हो जाता तब तक इसे परम शत्रु मानना चाहिये।

स्त्रीधर्म प्रश्नोत्तरी—

स्त्रीके लिये मुख्य धर्म केवल पतिपरायणता ही है और सारे धर्म तो गौण हैं और उनका आचरण भी केवल पतिकी प्रसन्नताके लिये ही किया जाता है।

जो पुरुष अपनी स्त्रियोंको कष्ट देते हैं, उनका यथाविधि भरण-पोषण और सत्कार नहीं करते वे अधर्म करते हैं।

स्त्री शरीरसे पतिकी सेवा करे, घरका सारा कार्य करे और मनसे परमात्माका चिन्तन करे।

ब्रह्मचर्य—

दुर्दशाग्रस्त देशकी रक्षा ब्रह्मचर्यकी पुनः प्रतिष्ठासे ही हो सकती है। कच्ची नींवपर इमारत नहीं उठ सकती। इसी प्रकार ब्रह्मचर्यके बिना जीवन नहीं टिक सकता; यदि कहीं कुछ रहता है तो वह दुःखसे भरा हुआ रहता है।

कुछ लोगोंकी समझ है कि विवाहिता पत्नीके साथ चाहे जैसा व्यवहार किया जाय सब धर्म संगत है। परन्तु यह उनका भ्रम है। ·· ·· स्त्री सम्बन्धी चर्चा कभी न की जाय।

मानव-धर्म—

धर्महीन मनुष्यको शास्त्रकारोंने पशु बतलाया है। जो संसार के समस्त जीवोंके कल्याणका कारण हो, उसे ही धर्म समझना चाहिये। धृति, क्षमा, दम, अस्तेय (चोरी न करना), शौच, इन्द्रिय-निग्रह, धी, सत्य और अक्रोध—ये दस धर्मके लक्षण हैं।

चोरी अनेक प्रकारसे होती है, किसीकी वस्तुको उठा लेना, वाणीसे छिपाना, बोल कर चोरी करवाना, मनसे पराई वस्तुको ताकना आदि सब चोरीके ही रूप हैं। समाजकी प्रगति चोरीकी ओर बड़े वेगसे बढ़ रही है।

साधन-पथ—

साधनमें एक विघ्न है परदोष दर्शन। साधकको इस बातसे कुछ भी प्रयोजन नहीं रखना चाहिये कि 'दूसरे क्या करते हैं।' साधकको अपनी साधनाके कार्यसे इतनी फुरसत ही नहीं मिलनी चाहिये जिससे वह दूसरेका एक दोष भी देख सके। जिन लोगोंमें दूसरोंके दोष देखनेकी आदत पड़ जाती है वे साधन पथपर स्थिर रहकर आगे नहीं बढ़ सकते। जब दोष दीखते ही नहीं तब उनकी आलोचना करनेकी तो कोई बात ही नहीं रह जाती। दोष अपने देखने चाहिये।

आनन्दकी लहरें—

अपने मनके विरुद्ध शब्द सुनते ही किसीकी नीयतपर सन्देह करना उचित नहीं।...अगर आप दूसरेको चुपचाप बैठाकर अपनी बात सुनाना और समझाना पसंद करते हैं तो इसी तरह उसकी बात सुननेके लिये आपको भी तैयार रहना चाहिये।

गोपी-प्रेम—

गोपी-प्रेममें रागका अभाव नहीं है, परन्तु वह राग सब जगहसे सिमटकर, भुक्ति और मुक्तिके दुर्गम प्रलोभन व पर्वतोंको लाँघकर केवल श्रीकृष्णमें अर्पण हो गया है। इहलोक और परलोकमें गोपियाँ श्रीकृष्णके सिवा अन्य किसीको भी नहीं जानतीं।

सुप्रसिद्ध मासिक 'कल्याण' के संस्थापक-स
रूपमें श्रीपोद्दार द्वारा हमारी संस्कृतिके
निमित्त की गयी सेवाएँ दीर्घकाल तक स्मरण
नाम मात्रके मूल्यपर लाखों लोगोंके लिए धार्मि
व्याख्या सहित उपलब्ध कराकर उन्होंने
माध्यमसे हमारे धर्म ग्रन्थोंको लोकप्रिय बनानेमें
सेवा की है।

—बराह व्यंकट गिरि, भारत के रा

उन्होंने गीताप्रेससे जो साहित्य प्रकाशित
है, वह इतना बहुमूल्य तथा महत्वपूर्ण है कि इस देश
भावी पीढ़ियाँ, जिनके मनमें सच्चे धर्मके प्रति कुछ
सम्मान होगा, इससे बहुत कुछ सीखेगी और
उठायेगी।

सस्ती तथा सुन्दर पुस्तकोंके रूपमें ला
संख्यामें प्रकाशित गीता, रामायण तथा मह
के विभिन्न संस्करण शताब्दियों तक श्रीहनुमानप्रसा
के सर्वोत्तम स्मारक बने रहेंगे।

—मोरारजी दे